व्रजके भक्त

र

डा॰ बि॰ ला॰ क

व्रज के भक्त

चतुर्थ खण्ड

डा० अवधबिहारी लाल कपूर

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।

★ **प्रकाशक :**

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१००१

★ **प्रकाशन तिथि :**

गोपाष्टमी (सम्वत् २०३८)

५ नवम्बर, १९८१

★ **प्रथम संस्करण :**

२००० प्रतियाँ

★ **मुद्रक :**

श्रीसर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन

★ **मूल्य :**

पाँच रुपये

★ **मुखपृष्ठ :**

चित्रमें श्रीजयकृष्णदास बाबाजी श्रीकृष्णको जल पिलाते हुए। भक्त और भगवान् दोनों भाव-विभोर मुद्रामें एक-दूसरेको निहार रहे हैं, जल भूमिपर गिर रहा है।

निवेदन

'व्रजके भक्त' के इस चतुर्थ खण्डमें व्रजके चौंतोस आधुनिक भक्तोंके चरित्रका संग्रह है।

इसके प्रकाशनमें भी कुछ विलम्ब हुआ, क्योंकि तृतीय खण्डकी तरह इसके भी प्रायः सभी चरित्र ऐसे हैं, जिनपर अभीतक कुछ नहीं लिखा गया था और जिनके लिए नये सिरेसे सामग्री एकत्र करनी थी। इसके कुछ चरित्र अपेक्षाकृत बहुत बड़े हो गये हैं, कुछ अपेक्षाकृत बहुत छोटे रह गये हैं। उद्देश्य यह रहा है कि जिस चरित्रके लिए जितनी भी ऐसी सामग्री मिले, जिससे साधकोंको प्रेरणा मिल सके, उसे लिपिबद्ध कर दिया जाय। जिन चरित्रोंके लिए पर्याप्त बहुमूल्य सामग्री मिल गयी, उनमें विस्तारके भयसे काट-छाँट करनेकी चेष्टा नहींकी गयी।

हम सभी सम्प्रदायोंके उन महानुभावोंके आभारी हैं, जिन्होंने सामग्री संग्रह करनेमें हमारी सहायता की, विशेष रूपसे भाई काशीप्रसादजी श्रीवास्तव, अवकाशप्राप्त एस० पी० और श्रीजगदीशदास राठौरके, जिनका उत्साहपूर्ण सहयोग इस खण्डमें भी बना रहा।

पंचम खण्डके मुद्रणका कार्य प्रारम्भ होने जा रहा है। उसे भी हम पाठकों तक शीघ्र पहुँचानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

श्रीगोपाष्टमी
सम्वत् २०३८

विनीत
अवधबिहारी लाल कपूर

विषय-सूची

भक्तावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके शुभाविर्भावके
पञ्चशतवार्षिक स्मरणके उपलक्ष्यमें
यह भक्त-चरित-कुसुमाञ्जलि
भक्तजनोंके करकमलोंमें
सप्रेम समर्पित है।

भक्तिमती श्रीआनन्दीबाईजी

(वृन्दावन)

लाहौरके सालमीगेट बाजारकी घटना है। एक वृद्धा किसी कपड़ेकी दुकानपर कपड़ा देख रही थी, एक बालक उसके साथ था। दुकानदारने तरह-तरहके रेशमी थानोंके ढेर उसके सामने लगा रखे थे। अचानक उसकी दृष्टि पड़ी एक वेश्या पर, जो साड़ी और बुरका पहने तांगेमें घर जा रही थी। उसे देखते ही एक मधुर कल्पना बिजली-सी कौंध गयी उसके मनमें और एक मधुर स्मित खेल गयी उसके अधरोंपर। विस्फारित नेत्रोंसे वह कुछ देर उस वेश्याको ऊपरसे नीचे तक देखती रही। फिर पास बैठे बालककी पीठपर हाथ मारकर बोली—"नन्दलाल, झट एक ताँगा तो करला।"

नन्दलाल भागा गया और ताँगा ले आया। वृद्धा उसके साथ ताँगेपर बैठ गयी। ताँगेवालेसे बोली—"वह जो ताँगा आगे जा रहा है, उसके पीछे-पीछे ले चल।"

दुकानदार भौंचक्का-सा देखता रह गया। उसे लगा कि वृद्धाको कोई प्राणोंकी संजीवनी दीख गयी, जिसे देखते ही वह सुध-बुध खो एकदम उसके पीछे भाग पड़ी।

कुछ दूर जा वह ताँगेसे उतरी और वेश्याके पीछे-पीछे चूनमडीमें उसके कोठेपर चढ़ गयी। उसे देख वेश्या अचंभित! झाड़-फानूस, कालीन, मसनद और तकियोंसे

सजे उस कमरेमें वृद्धाको एक गलोचेपर आदरपूर्वक बिठा कर उसने पूछा—"माँ, आप कहाँसे आयी हैं ? मैं आपकी क्या खिदमत कर सकती हूँ ?"

वृद्धाने कहा—"मैं वृन्दावन रहती हूँ। मेरी एक बहू है। उसके लिए दुकानपर कपड़ा देख रही थी। सहसा मेरी दृष्टि पड़ी आपकी इस साड़ी और बुरकेपर। बस मैं यहाँ तक खिची चली आयी। मैंने सोचा आपसे पूछूँ यह कपड़े कहाँसे खरीदे, जिससे मैं भी ऐसे ही कपड़े लेकर बहू का लहंगा और फरिया बनवाऊँ। बड़ी शौकीन है मेरी बहू। कैसी सुन्दर लगेगी वह इन कपड़ोंमें !"

"आपकी बहू बड़ी खुशनसीब है माँ, जिसे उसकी सास इतना प्यार करती है। क्या नाम है उसका ? कहाँ की बेटी है ?"

"उसका नाम 'राधा' है। बरसानेके राजा वृषभानुकी वह बेटी है।"

वेश्याने कौतुहलवश आँखें चमकाते हुए पूछा—"और आपके खुशनसीब साहबजादेका क्या नाम है ?"

"उसे लोग 'कन्हैया' कहते हैं। पर मैंने उसका नाम आनन्दवल्लभ रखा है।"

तब वेश्याने हँसकर कहा—"अच्छा ! मैं समझ गयी। तबतो वह मेरी भाभी हुई माँ। उसके लिए कपड़े मैं मँगा दूँगी। यह कपड़े यहाँ नहीं मिलते। मुझे अमृतसरके मेरे प्रेमी एक कपड़ेके व्यापारीने दिये थे।"

"तो आप मुझसे पैसे लेकर एक-एक थान दोनोंका मंगादें।"

"पैसोंका हिसाब पीछे हो जायगा, माँ। मैं आपको कपड़े वृन्दावन पहुँचा दूँगी। आप मुझे अपना पता बतादें।"

"मेरा पता है—आनन्दीबाई, श्रीराधाआनन्दवल्लभ-जीका मन्दिर, राधावल्लभघेरा, वृन्दावन।"

आनन्दीबाईके वृन्दावन पहुँचनेके कुछ ही दिन बाद बिल्टीके साथ अमृतसरके व्यापारीकी चिठ्ठी आयी, जिसमें लिखा था–"आपकी बहू और लालाके लिए आपकी पसन्द के दो थान भेज रहा हूँ। इन्हें मेरी ओरसे उन्हें भेंट करनेकी कृपा करें।"

आनन्दीबाई उस काशमीरी ब्राह्मण परिवारकी एक परमतेजोमयी महिला थीं, जो परम्परासे मोतीलाल नेहरू और उनके पूर्वजोंकी पुरोहिताई करता आ रहा था। उनका जन्म सं० १९१२, कार्तिक सुदी पञ्चमीको हुआ था। उनके पिता अमृतसरमें सिटी इन्सपैक्टर थे। आरम्भसे ही उनका भगवत्-सेवा और साधु-सेवामें बड़ा अनुराग था। उनकी सगाई हुई तभी उनके होनेवाले पतिका देहान्त हो गया। उन्होंने तब माँसे कहा—"भगवान्ने कृपाकर यह संकेत किया है कि मेरा जन्म उनकी सेवाके लिए है, जन्मने-मरनेवाले मनुष्यकी सेवाके लिए नहीं। मैं अब विवाह नहीं करूँगी।" माता-पिता और गुरुजनोंके बहुत समझानेपर भी वे अपने संकल्पपर दृढ़ रहीं।

उन्होंने जगरावांके रामानुज सम्प्रदायके आचार्य श्रीवंशीधरजी महाराजसे दीक्षा ली और विधिवत् भजन करने लगीं। रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षित होते हुए भी उनकी राधा-कृष्णमें विशेष निष्ठा थी। उन्होंने पिताजीसे प्रार्थना की एक मन्दिर बनवाकर उसमें राधा-कृष्णकी मूर्तियाँ पधारने की, जिससे उन्हें उनकी नित्य आत्मवत्-सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे। पिताने फौव्वारे-वाले चौकमें घी मंडीके दरवाजेके पास अपने मकानमें ही एक मन्दिरका निर्माण किया। उसमें श्रीराधा-आनन्द-वल्लभजीकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की। आनन्दीबाई प्रेमसे उनकी सेवा करने लगीं। उनका नित्य नया श्रृंगार करतीं, नये-नये व्यंजनोंका उन्हें भोग लगातीं, उन्हीकी सेवा-पूजामें सदा संलग्न रहतीं।

कुछ दिन बाद उनके माता-पिताका देहान्त हो गया। गुरुदेव भी नित्यधाम पधार गये। तब वे तीर्थ-यात्राको निकलीं। श्रीराधा-आनन्दवल्लभको अपनी बहनके पास आगरेमें छोड़ कुछ दिन तीर्थोंमें भ्रमण करती रहीं। फिर कुछ दिन कामवन रहकर वृन्दावन पधारीं। वि.सं. १९६३ में राधावल्लभजीके घेरेमें भूमि खरीदकर मन्दिरका निर्माण किया। श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीको उसमें विराजमान करा स्थायीरूपसे वृन्दावन रहने लगीं।

श्रीराधा-आनन्दवल्लभजीके प्रति आनन्दीबाईका वात्सल्य भाव था। आनन्दवल्लभजी उनके पुत्र थे, राधा पुत्रवधू। दोनों बड़े रसिक थे। आनन्दीबाई उनकी

रसिकता से विमुग्ध थीं और निकटस्थ श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरकी परिपाटीके अनुसार उनकी आत्मवत् सेवाकर आत्मविभोर रहती थीं।

आज आनन्दवल्लभजीको हलुआ चाहिये, आज खीर, आज मालपुआ, कलाकन्द, या बालूसाई। आज वे राजा बनेंगे, आज ग्वारियेका वेश धारणकर गइयें चराने जायेंगे, आज नाग नाथेंगे, रास करेंगे या जल केलि। उनकी वेश-भूषा और साज-सज्जा आज सब उसके अनुरूप ही होगी। आज वे अमुक गायकका गान सुननेको मचल रहे हैं, तो आज अमुक वादकका बाद्य सुननेका हट कर रहे हैं। आज राधा मचल रही हैं कि वे पहनेंगी तो नयी साड़ी पहनेंगी, नहीं तो पहनेंगी ही नहीं। आज उनका फूलोंके श्रृङ्गारका मन है, तो आज जल-बिहार या नौका-बिहारका। आनन्दीबाई बड़े प्रेमसे दोनोंके नाज-नखरे उठातीं। दोनोंकी नित्य नये-नये साज-श्रृङ्गारमें नयी-नयी छबि देख अपने कोटि-कोटि प्राण उनपर न्यौछावर करतीं। उनके समकालीन रसिक संत श्रीरूपमाधुरीशरणजीने उनके सम्बन्धमें यह कवित्त लिखा है—

भक्त आनन्दीबाई, रसिकन सुखदाई,
श्यामा-श्यामने पठाई सेवा-सुख सरसानको।
लाल ललीको लड़ावे, बहु भाँति-सों झुलावे,
खेल होरीको खिलावे, वारे तन-मन-प्रानको॥
जाके नेक नहिं मान, हिये दीनता प्रधान,
बानी प्रेम-रसखान, नसा प्रेमकी छकानको।

छबि श्यामाजूकी एक, प्रान वारै देख-देख,
जाको महिमा अलेख, हिय धरि लेऊ ध्यानको ।।
(श्रीरूपमाधुरी शरणजीकी वाणी, ३-४)

आनन्दीबाईके मन्दिरकी सेवा-परिपाटी और उनके ठाकुरकी नित्य नयी मधुरिमाँकी ख्याति चारों ओर फैल गयी । वृन्दावनके दर्शनोय मन्दिरमें उसकी गणना की जाने लगी । दूर-दूरसे दर्शनार्थी दर्शनको आने लगे । एक बार पंडित मोतीलाल नेहरू और उनकी पत्नी आये और श्रीआनन्दवल्लभजीको एक सुंदर मोतियोंकी माला भेंट कर गये । उस दिन उस मालाके साथ श्रीआनंदवल्लभकी अपूर्व शोभा निहार आनन्दीबाईके आनन्दका छोर न रहा ।

एक दिन जब एक दर्शनार्थी दर्शन करके जाने लगा, आनन्दीबाईने नन्दलालसे[1] कहा—"तू इनके पीछे-पीछे जा । देख ये कहाँ जाते हैं । पर यदि ये तुझे देख लें और लौटनेको कहें तो वहींसे लौट आना ।" नन्दलालजी उनके पीछे-पीछे गये । मोती झीलके पास उन्होंने मुड़कर उनकी ओर देखा और लौट जानेको कहा । जब वे लौटकर आये आनन्दीबाईने पूछा—"तूने क्या उनमें कोई विशेषता देखी ?"

---

१. नन्दलालजी बाल्यावस्थामें अपने पिताके साथ अमृतसर में आनन्दीबाईके मन्दिरमें कीर्तनमें जाया करते थे । तभीसे आनन्दीबाईका उनपर वात्सल्य-भाव था और वे अधिकतर उनके साथ ही रहा करते थे ।

नन्दलालजीने कहा—"देखो, उनकी परछाई पृथ्वी पर नहीं पड़ती थी और आंखोंकी पलकें नहीं झपती थीं।"

आनन्दीबाईने कहा—"वे इच्छाधारी थे। इच्छानुरूप शरीर धारण करनेकी सामर्थ्य रखते थे।" इस प्रकार न जाने कौन-कौन किस रूपमें आनन्दवल्लभजीके दर्शन करने आया करते।

आनन्दवल्लभजीकी सेवामें आनन्दीबाईके अंतरंग सहायक थे रसिक संत श्रीकिशोरीदास बाबा (सिद्ध श्रीनित्यशरणनन्दजी अवधूत)। वे युवावस्थामें ही उनके सम्पर्कमें आ गये थे। आनन्दवल्लभजीके बाद उन्हींको वे अपना दूसरा पुत्र मानती थीं। वे आनन्दबाईके मंदिरके निकट दाऊजीके मन्दिरमें रहते थे। पाक विद्या और फूल-सेवामें वे बड़े निपुण थे। आनन्दवल्लभजीकी रसोई और उनकी फूल-सेवाका काम अधिकतर वे ही करते थे।

एक दिन उन्होंने आकर देखा कि आनन्दीबाई मन्दिर के बाहर बैठी रो रही हैं। उन्होंने पूछा—"माँ, क्या बात है ? क्यों दुखी हो रही हैं ?"

वे बोलीं—"क्या करूँ बेटा ? आज लाली बड़ी मचल रही है। कल बुन्नू-मुंशीकी दुकानपर साड़ी देखने गयी थी। एक साड़ी बहुत कीमती थी। उसे छोड़ आयी, दूसरी ले आयी। उसे नहीं पहिन रही है। जितनी बार पहनाती हूं उतार देती है। कहती है—"मैं तो वही साड़ी पहनूँगी, जिसे तू छोड़ आयी है।"

"तो इसमें दुःखी होनेकी क्या बात है माँ, मैं जाकर वही साड़ी लिये आता हूँ।"

किशोरीदास बाबा गये और बुन्नू मुंशीकी दुकानसे वह साड़ी ले आये। पैसे सेठ हरगूलालजीके नाम लिखा आये। माँने राधारानीको साड़ी पहनाई। उन्होंने झट बड़े कलात्मक ढंगसे पहन ली। माँ और दर्शनार्थी देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

सेठ हरगूलालजी आनन्दीबाईकी बहुत सेवा किया करते। उन्होंने दुकानदारोंसे कह रखा था–आनन्दीबाईको जिस चीजकी जरूरत हो मेरे नामपर दे दिया करो। आनन्दीबाई आनन्दवल्लभको जब जिस चीजकी जरूरत होती उनके नामसे उधार ले आतीं और पीछे कर्ज चुकाती रहतीं।

आनन्दीबाईपर कर्ज इसलिये रहता कि उनके खर्चेकी कोई सीमा न थी। श्रीराधा-आनन्दवल्लभकी सेवाके अतिरिक्त संत-सेवा भी वे नित्य प्रेमसे किया करतीं। १०-१५ संत तो नित्य उनके स्थानपर प्रसाद पाया ही करते। उनका दरवाजा संतोंके लिए सदा खुला रहता। जो जिस समय आ जाता उसी समय उसके लिए प्रसादकी व्यवस्था की जाती। उनके मन्दिरके निकट एक प्राचीन मंदिर है, जिसके खाली पड़े विशाल कक्षमें साधु-संत प्रायः रात्रिमें आकर विश्राम करते हैं। आनन्दीबाई नित्य रात्रि में अपने मंदिरका दरवाजा बन्द करनेके पूर्व उस मंदिरका चक्कर लगातीं। यदि वहाँ कोई भूखा साधु या भिखमंगा

पड़ा होता, तो उसे खिलाये वगैर स्वयं प्रसाद ग्रहण न करतीं।

आनन्दवल्लभजीके दरबारमें गायकों और वादकोंका समाज जुटा रहता। छोटेलालजी और बड़ेलालाजी नाम के मथुराके प्रसिद्ध सितारिये और टटिया स्थानके बाबा कुंजबिहारीदासजी जैसे प्रसिद्ध समाज गायक अपनी-अपनी कलाओंसे श्रीराधा-आनन्दवल्लभका मनोरंजन किया करते। आनन्दीबाई उनकी भी पर्याप्त सेवा करतीं। आनन्दवल्लभजीके कीमतीसे कीमती शाल-दुशाले उपहार में उन्हें देनेमें तनिक भी संकोच न करतीं।

रास-लीलासे भी आनन्दीबाईको बहुत प्रेम था। उन्होंने रास-लीलाके लिए एक बडा हाल मन्दिरके ऊपर बनवा रखा था। उसमें रासधारियोंके लिए कीमतीसे कीमती पोशाकें, मोर-मुकुट और उनकी साज-सज्जाकी अन्य सामग्री रखी रहती थी। रास-लीलाकी अच्छीसे अच्छी मंडलियोंका रास वहाँ हुआ करता था।

यह सारा काम कर्जसे चला करता था। आनन्द-वल्लभजी किसी न किसी भक्तको प्रेरणा देकर कर्ज चुकानेकी व्यवस्था कर दिया करते थे। कर्ज चुकाने के लिये धन एकत्र करनेके उद्देश्यसे आनन्दीबाईको अमृत-सर और लाहौर आदि स्थानोंकी भी कभी-कभी यात्रा करनी पड़ती थी।

पर आनन्दवल्लभजीको आनन्दीबाईका उन्हें छोड़कर कहीं जाना अच्छा न लगता। वे किसी न किसी बहाने

उन्हें शीघ्र लौट आनेको विवश कर देते। एक बार वे हरिद्वार गयी हुई थीं। आनन्दवल्लभजीने स्वप्नमें उनसे कहा—"माँ, पुजारी हलवेका भोग नहीं लगाता। तुम शीघ्र लौट आओ।" वे उसी दिन हरिद्वारसे लौट आयीं। आकर मालूम हुआ कि सचमुच पुजारीने कई दिन प्रातः हलवेका भोग नहीं लगाया।

हलवेके आनन्दवल्लभजी बड़े शौकीन थे। कभी-कभी रात २ बजे माँसे कहते—"माँ, बड़ी भूख लगी है। उठ, हलवा बना दे।" माँ उसी समय उठतीं और नहा-धोकर उनके लिए हलवा बनातीं।

वे अपने ठाकुरकी सारी सेवा स्वयं ही करतीं। केवल बाबा किशोरीदासजी उनकी सहायता किया करते। पर संत-सेवाके कारण उन्हें ठाकुर-सेवाके लिए कभी-कभी अवकाश न मिल पाता। इसलिये वे मन्दिरमें एक पुजारी भी रखतीं। पुजारीसे जब भोगमें चूक हो जाती तो आनन्दवल्लभजी माँसे शिकायत करनेमें न चूकते। एक बार जाड़ेके दिनोंमें पुजारीने ठाकुरको शयन कराया, पर वह रजाई उढ़ाना भूल गया। आनन्दवल्लभजीने माँसे कहा—"माँ, बड़ी ठंड लग रही है, रजाई उढ़ा दो।" माँ उसी समय शय्यासे उठीं। स्नानादि कर मन्दिरमें गयीं, तो उन्हें देखकर दुःख हुआ कि सचमुच पुजारीने रजाई नहीं उढ़ाई थी।

क्या आनन्दवल्लभजी स्वयं रजाई नहीं ओढ़ सकते थे? माँको सोतेसे जगानेकी ऐसी क्या आवश्यकता थी

उन्है ? ओढ़ सकते थे ? पर माँके, लाड़ले बेटे थे न। उन्हें माँके हाथसे रजाई ओढ़नेमें सुख मिलता था, और माँको अपने हाथसे उन्हें उढ़ानेमें। तब वे अपने हाथसे ओढ़नेका कष्ट क्यों करते ? उनका तो आविर्भाव ही अर्चा-विग्रह के रूपमें हुआ था माँकी प्रेम-सेवा अंगीकार कर उन्हें सुखी करने और स्वयं सुखी होनेके उद्देश्यसे। इस रूपमें उन्हें माँकी प्रेम-सेवा-सुखका आस्वादन करनेकी जितनी सुविधा थी, उतनी क्या और किसी रूपमें संभव थी ? माँ पौढ़ाए तो पौढ़ना, माँ उढ़ाए तो ओढ़ना, माँ जगाए तो जागना, माँ ही नहलाए तो नहाना-धोना और माँ ही खिलाए तो खाना-पीना !

पर केवल माँ ही बेटा-बहूके लिए सब कुछ करती रही हों और बेटा-बहू उनके लिए कुछ न करते रहे हों, सो नहीं। बेटा-बहू भी आवश्यकता पड़नेपर वैसे ही उनकी सेवाके लिए प्रस्तुत रहते। एक बार वे आठ दिन तक बीमार मन्दिरके ऊपरवाले कमरेमें पड़ी रहीं। लोगोंने सुना माँको कहते—'बेटा, तुम दोनों ऊपर क्यों आ गये। मुझे छुओ नहीं। देखो मैं आठ दिनसे नहाई नहीं हूँ।' उस समय कमरेमें और कोई नहीं था, लोग समझे माँ बाईमें बक रही हैं। पर उसी दिन वे स्वस्थ हो गयीं और नहा-धोकर ठाकुर-सेवा करने लगीं। तब वे समझे कि राधा-आनन्दवल्लभ अवश्य ऊपर गये थे और माँको स्पर्श किया था। तभी वे एकदम स्वस्थ हो गयीं।

सं० १९९३, अगहन सुदी १५ को आनन्दीबाईने नित्य

धाममें प्रवेश किया। संवाद पाते ही सारा वृन्दावन उमड़ पड़ा। अपार जन-समूहकी कीर्तन-ध्वनिके साथ उनके पार्थिव शरीरको जमुना-तटपर ले जाया गया। उन्हें अग्नि कौन दे, इसपर विचार हो रहा था, उसी समय एक कन्या सामने आयी और बोली—"मैं इनके कुनबेकी हूँ। अग्नि मैं दूँगी।"

उसने अग्नि दी। उसके कुछ ही पल बाद फिर वह किसीको न दीखी। कई दिनों तक भक्तोंमें चरचा होती रही—"कौन थी वह कन्या, जिसने अग्नि दी? कहाँसे आयी थी? कहाँ चली गयी? !"

श्रीगदाधरदास बाबाजी

(वृन्दावन)

वृन्दावनमें रंगजीके मन्दिरके सन्निकट लालाबाबूका बड़ा मन्दिर है। उसमें 'श्रीकृष्ण-चन्द्रमा' और श्रीराधा-रानीकी बड़ी आकर्षक दो मूर्तियाँ हैं। जो एकबार उन्हें देख लेता है, उसका मन-मन्दिर भी उनका एक और मन्दिर बन कर रह जाता है। वे सदाके लिए उसमें आ विराजते हैं और अपनी अनुपम रूप-माधुरीकी किरण-छटासे उसे आलोकित करते रहते हैं।

आजसे ५०-६० वर्ष पूर्वकी बात है। श्रीगदाधरदास बाबा नामके एक बंगाली महात्माने प्रथम बार उनके दर्शन किये। तभी उन्होंने इनपर ऐसी मोहिनी डाली कि वे वृन्दावनके दूसरे ठाकुरोंको भूल गये। वे नित्य केवल उन्हीके दर्शन करते,उनके सम्मुख नृत्य-कीर्तन करते-करते भाव-विभोर हो जाते और नेत्रोंसे अश्रु विसर्जन करते रहते। बीच-बीच में ऐसी हुँकार भरते जिससे दिशाएँ गूँज उठतीं। कभी-कभी मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ते और घण्टों उसी अवस्थामें पड़े रहते।

कुछ दिन बाद उनकी ऐसी दशा हो गयी कि कृष्ण-चन्द्रमाके दर्शन बिना उनका रहना ही दूभर हो गया। ब्रह्मकुण्डपर अपनी कुटियामें बैठे-बैठे किसी भी समय उन्हें ऐसी हूक उठती कि वे उनके दर्शनके लिये भागे चले जाते और उनके सामने अपना रोना-गाना शुरु कर देते। और कहीं तो उनके आने-जानेका कोई प्रश्न ही न था। वे संध्या समय थोड़ी देरको मधुकरीके लिए जाते। बाकी समय या तो अपनी कुटियामें नाम-जप करते होते या कृष्ण-चन्द्रमाके सामने कीर्तन करते होते।

पर एक दिन मंगला-आरतीसे लेकर शयन आरती तक किसी भी समय गदाधरदास बाबाको कृष्ण-चन्द्रमाके मंदिर में किसीने नहीं देखा। वे न जाने क्यों दावानल-कुण्डपर जा पहुँचे! अपने साथ लेते गये एक पोटलीमें फूल-माला और कुछ भोगकी सामग्री। पोटली एक कदम्बकी डालमें लटका दी। स्वयं उसके नीचे बैठकर कीर्तन करने लगे—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभू नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द ॥

आस-पासकी कुटियोंमें रहनेवाले महात्माओंको उनके कीर्तनकी ध्वनि देर रात तक सुनाई पड़ती रही । फिर यकायक बन्द हो गयी । दूसरे दिन बसंत पञ्चमी थी । प्रातःकाल दावानल-कुण्डके श्रीगोपालदास बाबाने देखा कि उस कदम्बपर बैठे पक्षी अपने कलरव द्वार गदाधरदास बाबापर हुई राधा-कृष्णकी किसी विशेष कृपाकी उद्-घोषणा कर रहे हैं । बाबा अचेतन अवस्थामें कदम्बके नीचे पड़े हैं । उनके पुलकित मुखारविन्दको अपूर्व आभासे लग रहा है कि वे किसी दिव्य अनुभूतिके अलौकिक आनन्दका अनुभव कर रहे हैं !

गोपालदास बाबा उन्हें उठाकर अपनी कुटियापर ले गये । धीरे-धीरे उन्हें कुछ वाह्य चेतना हुई । गोपालदास बाबाने पूछा—"बाबा, आपको क्या हो गया था ?" उन्होंने संकेतसे कुछ कहना चाहा, पर कह न सके । उनके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपक पड़े । उनकी बाह्य चेतना फिर जाती रही, जो लौटकर कभी न आयी । बहुत देरतक वे निश्चेष्ट, निस्पन्द अवस्थामें पड़े रहे । रात १० बजे उनके प्राण-पखेरू उड़कर वहाँ चले गये, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रमाकी चाँदनी सदा छिटकी रहकर भक्त-चकोरको तृप्त करती रहती है ।

गदाधरदास बाबाका जन्म बंगालके हुगली जिलेके

अन्तर्गत नतिकपुर ग्राममें हुआ था। कुछ-ही दिन पूर्व वे वृन्दावन आकर ब्रह्मकुण्ठके निकट रहने लगे थे।

लोगोंका कहना है कि उस दिन उनसे श्रीकृष्णचन्द्रमा ने स्वप्नमें दावानल-कुण्डपर दर्शन देनेकी बात कही थी। तभी वे उनकी पूजा और भोगकी सामग्री लेकर वहाँ पहुँच गये थे।

श्रीहंसदास बाबाजी एवं श्रीगोपालीबाई

(विलासगढ़, बरसाना)

वृन्दावनमें धोबीगलीमें दतियाकुञ्जकी एक कुटीमें श्रीगोपालदासबाबा रहा करते। बड़े ही विरक्त और प्रभावशाली महात्मा थे वे। श्रीमद्भागवत, रामायण और भक्तमाल आदिकी बड़ी सुन्दर कथा कहते। उनकी वाणीमें तेज था। उसके प्रभावसे न जाने कितने लोगोंके जीवनमें चमत्कारी परिवर्तन हुआ, कितने प्रेतों तकका उद्धार हुआ। वृन्दावनके किसी न किसी स्थानमें उनकी कथा नित्य हुआ करती। किसी संभ्रान्त परिवार की आभूषणोंसे लदी एक २०-२२ वर्षीया युवती भी उनकी कथा सुनने जाने लगी।

गोपालदास बाबा अंधे हो चुके थे। कथाके समय कोई ग्रन्थ पढ़ता था, वे व्याख्या करते थे। एक दिन–कथा

समाप्त होनेके पश्चात् उन्होंने पूछा—"यह किसके घरकी बाई थी, जिसके नूपुरोंकी ध्वनि कानमें आ रही थी ?"

किसीने उत्तर दिया—"वह हंसराजकी पत्नी थी।"

दूसरे दिन कथा कहते समय किसी प्रसंगमें उन्होंने कहा—

गहना बेचो साधु जिमाओ, यह तन दुःखको भांडो।
जनम-जनम गधैया होगी, राम भजो री रांडो॥

यह सुन स्त्रियाँ हंस पड़ीं। किसी-किसीने कहा—"बाबा बूढ़ो हय गयो, तऊ गाली देबे।" पर अन्तरयामी बाबाने जिस असाधारण संस्कार-संयुक्ता महिलाके अंतरभावको उद्दीप्त करनेके उद्देश्यसे यह बात कही थी, उसके मर्मस्थलको वह स्पर्शकर गयी। वह घर जाकर हंसराजसे बोली—"मैं जिस महात्माकी कथा सुनने जाती हूँ उनसे दीक्षा लूँगी। गहने बेचकर साधु-सेवा करूँगी। विरक्त हो इस नश्वर देहको निरंतर भजनमें नियुक्त कर जीवन सार्थक करूँगी। आप भी ऐसा ही करें।"

हंसराजजीने कहा—"गोपालदास बाबा सब प्रकारसे गुरु बनाने योग्य हैं। हम दोनों उनसे दीक्षा लेंगे। पर भजन गृहस्थमें रहकर ही करेंगे। तुम्हारी छोटी अवस्था है। विरक्त होकर अकेले रहना तुम्हारे लिये ठीक नहीं।"

पर पत्नी न मानी। उसका संकल्प दृढ़ था। वह नित्य विरक्त-वेश ग्रहण करनेके लिए हंसराजजीके पीछे पड़ी रहती और बिहारीजी से प्रार्थना करती—"प्रभु, या तो मुझे दुनियाँसे उठा लो, या मेरे पतिका मन फेर दो।"

हंसराजजी बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। भक्ति-भाव तो उनका भी कुछ कम न था। लखनऊके निकट काकोरी में एक धर्मनिष्ठ अस्थाना कायस्थ परिवारमें सन् १८५६ में उनका जन्म हुआ था। जन्मसे-ही उनमें भगवद्-भक्तिके प्रबल संस्कार थे। युवावस्थामें वृन्दावनमें रहकर भजन करनेके उद्देश्यसे वे सपत्नी वृन्दावन चले आये थे। जीविका उपार्जनके लिये लालाबाबूके मन्दिरमें नौकरी कर ली थी। यह स्थिति उन्हें भजनके लिए सर्वथा अनुकूल जान पड़ती थी।

एक दिन वे मन्दिरकी ओरसे नन्दगाँव और बरसानेके बीच संकेतमें किसी ग्वारियेके घर मन्दिरकी जमीनका लगान वसूल करनेके उद्देश्यसे कुड़की लेकर गये। उसका सारा सामान कुड़क कर लिया। उसके साथ उसकी लड़कीका जेवर भी कुड़क कर लिया। घरके बाल-बच्चे और स्त्रियाँ सब रोने लगे। ग्वारियेकी लड़की रोती हुई हंसराजजीके पास आकर बोली—"पिताजी, मैं तो बापसे मिलने मैके आयी थी। अब घर जाकर क्या मुंह दिखाऊँगी।"

यह दृश्य हंसराजजीसे न देखा गया। बिहारीजीकी कृपासे उन्हें एक नयी प्रेरणा मिली। उनका मन संसारसे फिर गया। उन्होंने कुड़क किया हुआ सारा सामान ग्वारियेको लौटा दिया। उसी दिन मन्दिर जाकर स्तीफा दे दिया। चार्ज देते-देते रातके ११ बज गये। घरपर पत्नी चिंता में बैठी बिहारीजीसे प्रार्थना कर रही थी।

वह क्या जानती थी कि बिहारीजीने उसकी प्रार्थना सुन ली है और उसके शुभ संकल्प के अनुकूल व्यवस्था करने के उद्देश्यसे एक लीला रची है, जिसके कारण ही आज उसके पतिको घर लौटनेमें देर हो रही है ?

घर लौटकर हंसराजजीने पत्नीसे कहा—"मैं नौकरी से स्तीफा दे आया हूँ। कल हम दोनों संसारसे भी स्तीफा देकर वैराग्य-वेश धारण करेंगे।"

पत्नीकी खुशीका ठिकाना न रहा। वह "जैबिहारी-जीकी !" कहकर आनन्दाश्रु विसर्जन करने लगी।

दूसरे दिन पति-पत्नीने गोपालदास बाबाजीके पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। बाबाने कहा—"अभी तुम लोगोंकी उमर थोड़ी है। अच्छा होगा कि तुम घर पर रहकर ही भजन करो।"

पर जब देखा कि दोनोंमेंसे कोई इससे सहमत नहीं है और दोनोंका निश्चय दृढ़ है, तब उन्होंने दोनोंको विरक्त-वेश दे दिया। पतिका नाम रखा 'हंसदास', पत्नीका 'गोपालीबाई'। हंसदासको बरसानेमें साँकरी खोरके पास विलासगढ़में रहकर भजन करनेकी आज्ञा दी और गोपालीबाईको गोवर्धनमें हाथी दरवाजेके निकट एक कोठरीमें रहकर भजन करने की।

गोपालीबाईने अपने सब गहने बेचकर साधु-सेवा कर दी। स्वयं गोवर्धन जाकर मधुकरी वृत्तिसे जीवन निर्वाह करते हुए भजन करने लगीं।

हंसदासजीके पिताने जब सुना कि उनके पुत्र और पुत्र-वधू दोनोंने विरक्त-वेश धारण कर लिया है, तो वे भागे वृन्दावन आये। वे स्वयं भी भक्ति-भाव सम्पन्न तो थे ही, गोपालदास बाबाजीके दर्शन कर उनके रंगमें रंगे बिना न रह सके। गोपालदासजीसे विरक्त वेश ले उनकी आज्ञासे संकेतमें भजन करने लगे। उनका नाम हुआ श्रीराधिकादास।

गोपालीबाईके पिता लखनऊमें मैजिस्ट्रेट थे। जब उन्हें पता चला कि उनकी लड़की, जमाई और समधी तकको किसी साधुने बाबाजी बना दिया है, तो वे क्रोधसे आग-बबूला हो गये। वृन्दावन जाकर उन्होंने गोपालदास बाबाजीको बहुत-सी खरी-खोटी सुनाई और जेल भेजनेकी धमकी दी।

बाबा निर्विकार भावसे चुपचाप सुनते रहे। जब वे कुछ शांत हुए तब हँसकर बोले—"मैजिस्ट्रेट साहब, मुझे आप जेल अवश्य भेज दें। मेरे लिए तो संसार भी जेल ही है। बल्कि इस जेलसे वह जेल अच्छी है, क्योंकि यहाँ माँगकर खानी पड़ती है, वहाँ बिन माँगे मिल जाती है। पर आपका मेरे ऊपर क्रोध उचित नहीं। आपका काम है लोगों को जेल भेजने का, मेरा काम है जेलसे उन्हें छुड़ाने का। संसार-रूपी जेलमें हम सब अनादिकालसे बन्दी हैं और तरह-तरहकी यातनाएँ भोग रहे हैं। जिस

दिन आप यह भली प्रकार जान लेंगे आपका भी दृष्टि-कोण बदल जायगा और आप भी संसाररूपी जेलमें अपनेको बन्दी मान अपनी लड़की और जमाईकी तरह उससे छुटकारा पानेको सचेष्ट हो जायेंगे।

संसार-बन्धनका कारण मोह है। मोहके कारण ही मनुष्य पिता-पुत्र, बहू-बेटी और जमाई आदिसे अपना नित्य जैसा संबन्ध मान लेता है। फिर सहसा उनसे विच्छेद होनेपर दुःखी होता है, क्रोध करता है! आपकी बेटी और जमाईका मोह अब जाता रहा है। पर आपका मोह बना हुआ है। इसलिए उन्हें आपसे सम्बन्ध तोड़नेमें दुःख नहीं हुआ, आपको हो रहा है। साँसारिक सम्बन्ध रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें बैठे यात्रियोंके बीच सम्बन्धके समान क्षणिक है। जब जिसकी यात्रा समाप्त होती है वह रेलगाड़ीसे उतर पड़ता है। डिब्बेमें बैठे दूसरे यात्रियों का इसपर आपत्ति करनेका कोई अधिकार या औचित्य नहीं होता। जिन्हें आप अपनी बेटी और जमाई मानते हैं, उनकी रेल-यात्रा समाप्त हो चुकी है। वे अपने गन्तव्य स्थानके निकट पहुँच चुकनेके कारण गाड़ीसे उतर पड़े हैं। यथार्थ बात यह है। इसलिये आपके क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है।

सांसारिक सभी जीव रेलगाड़ी में बैठे उन उन्मादग्रस्त यात्रियोंके समान हैं, जो बिना टिकट गाड़ीपर बैठ लेते हैं और जिन्हें पता नहीं होता वे कहाँ जा रहे हैं। कालरूप टी. टी. आकर उन्हें जहाँ इच्छा होती है धक्का देकर

उतार देता है, या जेल भेजनेके लिए सिपाहियोंके सुपुर्द कर देता है। प्रभुकी कृपासे या महत् संगसे जिनका उन्माद जाता रहता है, वे गाड़ीसे उतर पड़ते हैं और टी. टी.के धक्कोंसे बचे रहते हैं। फिर उन्हें जहाँ जाना चाहिये उस ओर चल देते हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपका भी मोह दूरकर आपको उस पथ-का पथिक बनायें जिसपर चलकर आप वास्तविक सुख-शान्ति लाभ कर सकते हैं।"

मैजिस्ट्रेट साहबने बाबाको मुलजिम जानकर उनके प्रति अपशब्द कहे थे। उन्होंने पहले भी बहुतसे मुलजिमों पर डाट-डपट की थी। पर किसीने इतनी निर्भीकतासे अपनी सफाई पेश नहीं की थी। किसीने सफाई पेश करते हुए उलटे उन्हें अपराधी रूपमें कारागारमें पड़े रह-कर अनन्तकालसे सजा भोगते रहनेका अहसास नहीं कराया था। बाबाकी वाणी उनके हृदयाकाशमें बिजली की तरह कौंध गयी। उनका मोहान्धकार छँट गया। संसार एक कारागार है, यह उन्हें स्पष्ट दीख गया। बाबाके प्रति द्वेषका भाव अलक्षित रूपसे कुछ-कुछ श्रद्धामें परिणत हो गया। उन्होंने कुछ दिन और वृन्दावनमें रह-कर उनका सत्संग करनेका निश्चय किया।

कई दिन लगातार बाबाकी कथा सुनने और उनका संग करनेके पश्चात् उनके हृदयमें ऐसा परिवर्तन हुआ कि एक दिन वे उनके चरणोंमें गिरकर अपने नयन-जलसे उन्हें अभिषिक्त करते हुए बोले—"बाबा, मैंने आपके

चरणोंमें बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करें और मेरे ऊपर भी ऐसी कृपा करें, जिससे भव-बन्धनसे मेरी मुक्ति हो और राधा-कृष्णके चरण-कमलोंकी प्राप्ति हो।"

बाबाने उनपर भी कृपा करनेमें देर न की। वे भी बाबासे दीक्षा ग्रहण कर भजनमें जुट गये। व्रजमें यह सारी घटना एक परिवारके सभी सदस्योंके वैराग्य, तितिक्षा और भजनाग्रहकी अभूतपूर्व मिसाल बनकर रह-गयी।

गोपालीबाई गोवर्धनमें कठोर वैराग्य धारण कर भजन करने लगीं। महावाणीकी वे बड़ी रसिक थीं। नित्य प्रेमसे महावाणीका पाठ करतीं और गोपाल-मन्त्रका जप करतीं। जप करते-करते उन्हें गोपाल-मन्त्र सिद्ध हुआ, और श्यामाश्यामके दर्शन हुए। एक दिन किसी कामी पुरुषकी उनपर दृष्टि पड़ी। अवसर देखकर उसने उनकी कुटीमें प्रवेश करना चाहा। सोचा कि इस समय यहाँ और कोई है नहीं जो बाधा दे। पर वह मूर्ख क्या यह जानता था कि भक्तवत्सल प्रभु स्वयं किसी न किसी रूपमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिए सदा तत्पर रहते हैं? वह जैसे ही कुटीके दरवाजेके निकट पहुँचा, उसने देखा कि एक सिंह दहाड़ता हुआ उसकी ओर अग्रसर हो रहा है। उसकी दहाड़ सुनते ही वह मूर्छित हो गिर पड़ा।

इस घटनाके पश्चात् गोपालीबाईके रहनेकी व्यवस्था बाबा हंसराजजीके शिष्य श्रीलाड़लीदासजीके मकानकी

एक कोठरी में कर दी गयी। शेष समय तक वे उसमें भजन करती रहीं।

बाबा हंसराजजी बरसानेमें मधुकरी वृत्तिसे रहकर भजन करते। कभी-कभी गुरुदेवके पास वृन्दावन जाते। गुरुदेवसे उन्होंने भक्तमाल और भागवतका अध्ययन किया।

उनकी बड़ी इच्छा थी भागवत कंठ कर लेनेकी। पर यह कोई सहज काम तो था नहीं। इसके लिए वे श्रीजीसे प्रार्थना करने लगे। एक बार एक भोली-भाली अपरिचित बालिकाने उनसे कहा—"बाबा, मुख खोल।" उन्होंने मन्त्र-मुग्धवत् मुख खोल दिया। बालिकाने जिह्वा पर कुछ लिख दिया। लिखते ही उन्हें विचित्र प्रकारका प्रेमावेश हुआ, जिसमें रोदन करते-करते आँख लग गयी। स्वप्नमें श्रीजीने कहा—"जा, तेरी जिह्वापर मैंने लिख दिया। तुझे भागवत कंठ हो जायगी।" तभीसे उन्हें भागवत कंठ हो गयी।

पं० रामकृष्णदास बाबासे उन्होंने व्याकरण पढ़ी। फिर गुरुजीकी आज्ञासे भागवत और भक्तमालकी कथा कहना प्रारम्भ किया। उनकी कथा बड़ी रसमयी होती। भागवत सप्ताहकी कथा भी वे कहा करते। पर सप्ताहकी कथा जहाँ भी कहते, वहाँ उसके आयोजकोंसे तय कर लेते कि जितने लोग नियमपूर्वक कथा सुनेंगे उनकी

सबकी कथाकी समाप्तिपर भरपेट प्रसाद द्वारा सेवा करनी होगी। कथामें जो भी भेंट आती उसे वे साधुओंमें बाँट देते। स्वयं परमहंस वृत्तिसे रहते। पैसा स्पर्श भी न करते।

गुरुदेवका चलाया श्रीनिम्बार्काचार्यका उत्सव वे बड़ी धूम-धामसे मनाते। दिग्विजयी श्र केशवकाशमीरीका उत्सव उन्होंने स्वयं चलाया। इन उत्सवोंको मनाने वे बरसानेसे वृन्दावन खाली हाथ आते। पर उनके आते ही सब सामग्री और कार्यकर्त्ता अपने आप आकर जुट जाते। उत्सवके पश्चात् वे जैसे खाली हाथ आते वैसे खाली हाथ चले जाते।

हंसदास बाबा निम्बार्क-सम्प्रदायके अंतरभुक्त होते हुए भी सभी सम्प्रदायोंके महात्माओंका संग करते। गौड़ीय-सम्प्रदायके पं० रामकृष्णदास बाबा, श्रीगौरांगदास बाबा और श्रीअवधदास बाबा, निम्बार्क सम्प्रदायके श्रीमाधव-दास बाबा और श्रीदुलारेप्रसादजी, हरिदासी सम्प्रदायके भक्तमाली श्रीजगन्नाथदासजी और शुक सम्प्रदायके रसिक-संत श्रीसरसमाधुरीशरणजीसे उनका निकटका सम्बन्ध था। जैसे वे सभी सम्प्रदायके महात्माओंका संग करते, वैसे ही उनके पास उनके संगके लिये सभी सम्प्रदायों के लोग आया करते। श्रीसरसमाधुरीशरणजी उनके उत्सवों में जयपुरसे पधारा करते। वे सभीके प्रति प्रेमका व्यवहार करते। सब यही समझते कि बाबा जितना उनसे प्रेम करते हैं, उतना शायद किसी औरसे नहीं करते। जो भी

उनके पास आता उससे पहले कहते—"भूख लगी होगी। कुछ खालो।" यदि वह मना करता तो आग्रह करते और कुछ न कुछ खिला देनेकी चेष्टा करते।

जैसा वे मनुष्योंसे प्रेम करते वैसा ही पशु-पक्षियोंसे भी। विलासगढ़में एक विशाल सर्प रहा करता। बाबा जब मध्याह्नके पश्चात् विलासगढ़की गुफासे बाहर निकलकर शिलापर विराजते, तो वह सर्प भी निकल आता और उनके सान्निध्यका सुख लेता, कभी-कभी उनके चरण भी चाट लेता। उनके युवा शिष्य श्रीवंशीदासजीको उसे देख भय लगता। उन्होंने एक दिन उसकी बांबीपर शिला रख दी। दूसरे दिन सर्पके न दीखनेपर बाबाने कहा—"आज नागराज नहीं आये।"

किसीने कहा—"बंशीदासने उनकी बांबीपर शिला रख दी है।"

रुष्ट होकर बाबा बोले—"बंशीसे कहो ऐसा न किया करे। नागराजके घरमें हम रहते हैं, हमारे घरमें वे नहीं।"

बाबा मानसी सेवामें सिद्ध थे। कई बार देखा गया कि जब वे अपनी गुफामें बैठे भजन करते होते, उस समय श्रीजीके मन्दिरमें जो भोग लगता उसे जान लेते। एक बार उन्होंने श्रीजीके लिये पोशाक बनवाई। उसे लेकर मन्दिर जाने लगे। साँकरी खोर पार करते ही एक आठ वर्षीया सुन्दर बालिका आते दीखी। उनके निकट आकर

लोभ भरी दृष्टिसे पोशाकको देखते हुए बोली—"बाबा, याय कहाँ लै जाय रह्यौ है ? मोय दै दै" और इतना कह पोशाक बाबाके हाथसे लेकर चल दी। बाबा देखते रह गये। पर उसके स्पर्श मात्रसे उनके अंग-प्रत्यंगमें एक दिव्य आनन्दकी लहर दौड़ गयी। भाव-विभोर अवस्थामें डग-मगाते-डगमगाते जब वे मन्दिर पहुँचे, तो श्रीजीको वही पोशाक पहने देख चकित रह गये। मन ही मन कहने लगे--"धन्य है लाड़ली ! तुम्हें इतना भी सबर न हुआ। आधे रास्तेसे ही पोशाक छीनकर धारण कर ली !" भला लाड़लीको सबर कहाँ ? वे तो प्रेमीके उपहारको उसके देनेके संकल्पके साथ ही लेनेको उतावली हो पड़ती हैं। यही तो है उन प्रेममयीके भक्तवत्सल स्वरूपकी विवशता, जिसपर उनका कोई नियंत्रण नहीं।

हंसदासजीका शुक सम्प्रदायके रसिक संत श्रीसरस-माधुरीशरणजीसे बड़ा स्नेह था। वे उनके स्नेहपूर्ण आग्रह पर अकसर जयपुर और अलवरके निकट शुक सम्प्रदायके आचार्य श्रीश्यामचरणदासजी महाराजके जन्म-स्थान डहरामें जाकर श्रीमद्भागवतकी कथा कहा करते।

सरस माधुरीजीके धाम पधारनेके पश्चात् एक बार जब हंसदास बाबा लगभग ७८ वर्षके थे, उन्हें श्रीसरस-माधुरीशरणजीके पुत्र श्रीरसिकमाधुरी शरणजी (श्रीराधे-श्याम शरणजी) श्रीशुकदेवजीके जन्मोत्सवपर कथा कहने के लिये जयपुर ले जा रहे थे। अछनेरामें उन्हें इतना तेज बुखार आया कि वे बेहोश हो गये। राधेश्यामजी

चिन्ता करने लगे—कहीं इनका शरीर व्रजके बाहर छूट गया तो क्या होगा ? उस समय बेहोशीकी अवस्थामें ही वे यकायक बोल पड़े—"राधे, तू सोच रह्यौ है बाबाको शरीर छूट गयो तो काऊको कहा मुख दिखरावैगो । चिंता मत करे । मैं मरूँगो नाँय । शुकदेवजीको कथा सुनायके आऊँगो ।"

ऐसा ही हुआ । उन्होंने जयपुरमें कथा कही, ऐसी भावपूर्ण कथा जिसे लोग आज तक याद करते हैं । वहाँसे स्वस्थावस्थामें लौटे । कुछ दिनों बाद सन् १९३७ में वृन्दावनमें पार्थिव शरीर छोड़ निकुञ्ज पधारे ।

उन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की, जो इस प्रकार हैं—

(१) सिद्धान्त-रत्नाञ्जली, (टीका), (२) चतुःसम्प्रदाय-सिद्धान्त, (३) कृष्ण-सिद्धान्तसार, (४) राधारहस्य प्रकाशिका, (५) गोदना-लीला (पद्य), (६) निम्बार्क-प्रभा (निम्बार्की सन्तोंका संक्षिप्त जीवन-चरित्र) ।

हंसदासजीके प्रधान शिष्य श्रीबालगोविन्ददासजी भी उन्हींके समान एक प्रचुर भक्ति-भावसम्पन्न और परम विरक्त संत थे । उन्होंने वृन्दावनमें निम्बार्ककोटकी स्थापना की और वहाँ उन सभी उत्सवोंके निरन्तर मनाये जानेका प्रवन्ध कर, जिन्हें उनके गुरुदेव मनाया करते थे, जन-कल्याणके लिये उनकी पुण्य-स्मृति सदा जगाये रखनेकी व्यवस्था की ।

श्रीकृष्ण-चैतन्यदास बाबा

(चन्द्र सरोवर)

सन् १८६१ में बंगदेशके चन्दन नगरमें श्रीअश्विनी-कुमारका जन्म हुआ। तभीसे कलकत्तेमें उनके पिता श्रीव्रजकुमार नन्दीके कारबारमें आशातीत वृद्धि होने लगी। जब अश्विनीकुमारने एन्ट्रेंसकी परीक्षा पास कर ली, पिताने उन्हें निकट बुलाकर कहा—"मेरा कारोबार वहुत बड़ा होता जा रहा है। मुझमें साहब लोगोंसे बात करने और उनसे पत्र-व्यवहार करनेकी योग्यता है नहीं। यह सब कार्य अब तुम्हींको करना है।" अश्विनीकुमार पिताजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर कारोबारमें उनकी सहायता करने लगे। कुछ ही दिनोंमें कलकत्तेमें एक बड़े ठेकेदारके रूपमें उनकी ख्याति हो गयी।

हुगली जिलेके अन्तर्गत पुइनान निवासी श्रीकेदारनाथ सेठकी कन्या श्रीमती गिरिबालासे उनका विवाह हो गया। उससे एक-एक कर पाँच पुत्र और पुत्रियोंका जन्म हुआ। अश्विनीकुमारपर इस प्रकार द्रुत गतिसे मायाने अपना जाल चारों ओरसे बिछा दिया।

पर उनके जीवनकी एक दूसरी दिशा भी थी। भक्तिका स्रोत भी उनके जीवनमें आरम्भसे उमड़ने लगा था। अब एक विशाल और वेगवती सोतस्विनीका रूप धारण

कर वह अविलम्ब समुद्रसे जा मिलनेके लिये व्यग्र हो उठा ।

बाल्यावस्थासे ही उनका अन्यमनस्क भाव देख माता पिताको उनके भावी जीवनके विषयमें चिन्ता होने लगी थी। एक दिन माँको मालाके साथ हरिनाम जप करते देख उन्होंने उनसे नाम-जपकी विधि सिखानेका आग्रह किया । उनका अतिशश आग्रह देख माँको उन्हें कानमें महामन्त्र सुना देना पड़ा । तभीसे उनका नाम-जप नियमित रूपसे चलने लगा । कुछ दिन बाद उन्होंने कुल-गुरुसे विधिवत दीक्षा भी ले ली । विविध कार्योंमें व्यस्त रहते हुए भी उनका गंगा-स्नान, नियमित जप, आन्हिक, पाठ और कीर्तन सुचारु रूपसे चलता रहा । परिणाम-स्वरूप उनका भक्ति-भाव अब इतना प्रबल हो गया कि उन्होंने मायाकी सभी ग्रन्थियोंको छिन्न-भिन्न कर वैराग्य-वेश ग्रहण करनेका निश्चय कर लिया ।

एक दिन रातको पिताकी चरण-सेवा करते समय उन्होंने कहा—"पिताजी, यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं रथयात्राके अवसरपर जगन्नाथजीके दर्शन कर आऊँ।"

"किसीके साथ जाओगे या अकेले ?" पिताजीने चिंतित हो पूछा ।

"अकेले नहीं पिताजी, मेरे साथी बङ्कू और कृष्णानन्द ब्रह्मचारी भी जायेंगे" अश्विनीकुमारने कहा ।

पिताने उनका संग उपयुक्त जान आज्ञा दे दी । जाते समय उन्होंने १००) खर्चको देना चाहा, पर अश्विनी

कुमारने यह कहकर उन्हें अस्वीकार कर दिया कि मार्गमें अधिक खर्च रखना ठीक नहीं। केवल उतने ही लिये जितने रेलके किराये और दो-चार दिन जगन्नाथपुरीमें रहने के लिये पर्याप्त हों। पिताने उतने रुपये देकर कहा—"पुरी पहुँचकर और जितनेकी आवश्यकता हो मँगा लेना।"

जगन्नाथ पुरीमें रथयात्रापर जगन्नाथजीके दर्शनकर बक्रू और ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी कलकत्ते लौट गये। पर अश्विनी कुमार वहीं रह गये। माता-पिता उनके भक्ति-भावके कारण उनकी ओरसे पहले ही सशंकित थे। उनके साथियोंके साथ घर न लौटनेपर उन्हें चिन्ता होने लगी। बक्रूसे पता पूछकर उन्होंने तारसे उन्हें रुपये भेजे और घर शीघ्र लौट आनेका अनुरोध किया। तार घर लौट आया। साथ ही अश्विनीकुमारका एक पत्र आया, जिसमें उन्होंने घर कभी न लौटनेका निश्चय कर परमार्थ-पथका पथिक हो रामेश्वरकी ओर चल पड़नेकी बात लिखी थी और अपने निर्णयके लिये क्षमा माँगते हुए आशीर्वादकी प्रार्थना की थी।

अश्विनीकुमार साथियोंके घर लौटते ही तीर्थ-भ्रमण के उद्देश्यसे दक्षिणकी पद-यात्रापर चल पड़े थे। भ्रमण-कालमें नियमोंकी रक्षा करना कठिन होता है। पर अश्विनीकुमारके नियम अटल थे। उनके व्यतिक्रम होने का कोई प्रश्न ही न था। वे नित्य नाम करते-करते १० कोस पैदल चलते। जब तक नाम-संख्या पूर्ण न होती कहीं विश्राम न करते। जिस स्थानपर भी पहुँचते नित्य-

कृत्य समापन कर भिक्षाको निकलते। कभी-कभी नित्य-कृत्य समापन करते संध्या हो जाती, तो भी नियमका व्यतिक्रम न होने देते। भिक्षाके लिये केवल सात घरोंमें जाते। उसीमें जो मिल जाता उसे ग्रहणकर संतुष्ट रहते। कभी-कभी दो-तीन दिन लगातार कुछ भी आहार न जुटता, तो जल पीकर ही रह जाते। कभी भिक्षाकी जगह दुत्कार मिलती, तो उसे भी चुप-चाप सहन करते।

श्रीधाम पुरीसे वे गोदावरी, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, बालाजी, श्रीरंगम और पञ्चतीर्थ होते हुए रामेश्वर पहुँचे। वहाँसे नासिक होते हुए द्वारकाकी ओर चल पड़े। फिर पुष्कर, जयपुर, करोली आदि स्थानोंमें पर्यटन करते हुए तीन वर्षकी कठिन पदयात्रा समाप्तकर श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे।

वृन्दावनमें भिक्षावृत्ति अवलम्बन कर भजन करते दिन आनन्दपूर्वक बीतने लगे। एक दिन रात्रिमें स्वप्नमें किसी दिव्यकान्तियुक्त मूर्तिने उनसे कहा—"तुम्हारा अभी वृन्दावनवासका समय नहीं हुआ है। बहुत काम बाकी है।"

निद्रा भंग होनेपर स्वप्नकी बात यादकर वे कुछ चिंता में पड़ गये। पर वे घर लौट जानेके लिये तो वृन्दावन आये नहीं थे। उन्होंने उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। दूसरे और तीसरे दिन फिर उन्होंने वही स्वप्न देखा। उनके अन्तरमें प्रबल अन्तर्द्वन्द छिड़ गया--इस दिव्य आदेश का पालन करूँ या न करूँ? अन्तमें प्रभुकी इच्छा जान

उन्होंने वृन्दावन छोड़ दिया और उत्तराखण्डकी यात्रापर चल दिये। कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, केदारनाथ और बद्रीनाथकी यात्रा कर लौटते समय रानीखेतमें रात्रिमें स्वप्न देखा कि उनकी बड़ी लड़की उनसे कह रही है—"बाबा, मैं क्या तुम्हारे दर्शन नहीं कर पाऊँगी ? तुम कब तक ऐसे डोलते-फिरते रहोगे ?'

स्वप्न देख अश्विनीकुमारका चित्त चंचल हो गया। वृन्दावनके स्वप्नकी भी उन्हें याद आ गयी। उसी क्षण घर चिट्ठी लिखी— 'मैं अमुक दिन अमुक गाड़ीसे घर आ रहा हूँ। किरायेके लिये पैसे भेज दो।" पैसे आनेपर वे गाड़ीपर बैठ लिये।

कलकत्ता स्टेशनपर उनके भ्रातागण हरिचरन नामके अपने वृद्ध कर्मचारीके साथ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी आ गयी, पर बहुत खोज करनेपर भी वे न दीखे। हताश हो सब घर लौटने लगे। उसी समय पीछेसे आवाज आयी—'हरिचरन, हरिचरन !' सबने पीछे मुड़कर देखा कि भिखारी वेशमें अश्विनीकुमार उनकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनके आनन्दकी सीमा न रही। आनन्दाश्रु विसर्जन करते हुए वे अश्विनी दादासे लिपट गये।

घर पहुंचकर जब अश्विनीकुमारने माता-पिताको प्रणाम किया, उन्होंने उन्हें हृदयसे लगाकर अपने अश्रु जलसे अभिषिक्त किया। दूर खड़ी साध्वी पत्नी भी यह दृश्य देख अश्रु विसर्जन करने लगीं। पुत्र, कन्या,

भाई-बन्धु और कर्मचारीगण सभी अश्रु विसर्जन करते हुए एक अनिर्वचनीय आनन्द-समुद्रमें गोते खाने लगे।

घर लौटकर कारोबारमें मनोनिवेश करते हुए भी अश्विनीकुमारकी नियम-निष्ठा और भजन-साधन पूर्ववत् चलते रहे। वे नित्य रात्रि ९ बजे सो जाते और १ बजे शय्या त्यागकर भजनमें बैठ जाते। गंगा-स्नान और आन्हिक कर एकबारमें पकाया हुआ स्वपाकित भोजन करते। नाम-जप, पाठ-कीर्तन, सेवा-पूजा आदि सब पूर्ववत् ही करते। उनकी पत्नी उनके साथ सहयोग करतीं और इस बातका ध्यान रखतीं कि उनके नियम-पालनमें किसी प्रकारका व्याघात न हो। इस अनुकूल परिस्थितिमें उनके दिन आनन्दपूर्वक कटने लगे।

पर उनका हृदय एक अन्तर्वेदनाके कारण व्यथित होता रहा। वृन्दावनमें रहते समय उनका चित्त श्री श्रीनिताइगौर और श्रीश्रीराधागोविन्दके दो चित्रोंके प्रति विशेषरूपसे आकृष्ट हो गया था। परन्तु उनका वे संग्रह नहीं कर सके थे। किस प्रकार उन चित्रोंका सग्रह हो यह चिन्ता उन्हें दिन-रात सताती रहती थी। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि चितपुर रोडपर एक दुकानमें उन्हें वे चित्र मिल गये हैं।

दूसरे दिन प्रातः वे चितपुर रोड गये। स्वप्नमें देखी दुकानके सदृश ही एक दुकान देख वे आश्चर्य और आनंद से अभिभूत हो गये। दुकानके भीतर जाकर देखनेपर उन्हें ठीक वैसा ही निताइ-गौरका चित्र प्राप्त हुआ। पर

राधागोविन्दका चित्र नहीं मिला। अकस्मात् उनकी दृष्टि एक अलमारीपर पड़ी। स्वप्नमें उसी अलमारीमेंसे राधागोविन्दका चित्र निकालकर दुकानदारने उन्हें दिया था। उन्होंने दुकानदारसे कहा—"इस अलमारीको तो देखिये।"

अलमारीमें और तरह-तरहकी चीजें भरी थीं, चित्र कोई नहीं था। दुकानदारने कहा—"इसमें कोई चित्र नहीं है।"

यह सुन अश्विनीकुमार हताश हो गये। नेत्रोंसे जल-बिन्दु टपकने लगे। हठात् दुकानदारको याद आया कि कल चित्रोंका जो नया बंडल आया है, वह उस अलमारी में रखा है। उसने हाथ बढ़ाकर बंडल निकाला। खोलते ही राधागोविन्दजीका ठीक वैसा ही चित्र, जैसा उन्होंने वृन्दावनमें देखा था दीख पड़ा। उसे देख अश्विनीकुमार उछल पड़े, जैसे उन्हें विश्वकी सबसे बड़ी सम्पत्ति मिल गयी हो, जैसे राधागोविन्द स्वयं कृपाकर चित्रके रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये हों!

एक दिन अश्विनीकुमार किसी कार्यसे जैसे ही घरसे निकले डाकियेने एक पत्र दिया। वृद्ध पिताजी पास थे। उन्होंने पत्र पढ़नेको कहा। पत्र पढ़ते-पढ़ते उन्हें ऐसा भावावेश हुआ कि वे उसे सम्हाल न सके! तुरन्त किसी प्रकार पत्र शेषकर इडेनगार्डेन चले गये। वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठ कर फूट-फूटकर रोते हुए उच्च स्वरसे विलाप करने लगे—"हा श्यामसुन्दर! हा वृन्दावनेश्वरी! मेरे किस अपराध

के कारण मुझे वृन्दाववसे ठेल दिया है तुमने ? मुझे अब कौन-सा ऐसा कार्य करना बाकी है, जिसके कारण संसार भोगना पड़ रहा है ? अब कब कृपा करोगी स्वामिनी ?"

पत्र एक सम्बन्धीका था। उन्होंने वृन्दावनमें पथरपुरामें अपने नव-निर्मित मन्दिरमें श्यामसुन्दरकी प्रतिष्ठा के अवसरपर नन्दी महाशयको सपरिवार आमन्त्रित किया था। पत्र पढ़ते ही अश्विनीकुमारकी विरहाग्नि धधक उठी थी।

कई दिन तक उनका विरहोन्माद बना रहा। उसे शान्त करनेके लिये और चन्द्रनाथका कृपा-आशीर्वाद ग्रहण करनेके लिये उन्होंने एक विशेष तिथिपर चन्द्रनाथकी पैदल यात्राकी। चन्द्रनाथके दर्शन करनेके उद्देश्यसे वे द्रुत गतिसे चले जा रहे थे। रास्तेमें एक दुकानदारसे पूछा— 'अभी चन्द्रनाथ कितनी दूर है ?"

उसने कहा—"अभी बहुत दूर है। आज आप किसी प्रकार वहाँ पहुँच नहीं सकेंगे। इसलिए रात्रिमें यहीं मेरे घर विश्राम करिये। कल चन्द्रनाथके दर्शन करिये।"

पर उन्हें तो उसी तिथिमें उनके दर्शन करने थे। वे चलते गये, चलते गये चन्द्रनाथका स्मरण करते हुए। मार्गमें जलतक ग्रहण नहीं किया इस भयसे कि कहीं विलम्ब न हो जाय और मन्दिरका द्वार बन्द मिले। भूखे-प्यासे जब वे देर रात्रिमें मन्दिर पहुँचे, मन्दिरका दरवाजा बन्द और चारों ओर सन्नाटा छाया देख उनके प्राण सूख गये। थके-हारे वे मन्दिरके दरवाजेपर लोट गये।

अकस्मात् मन्दिरसे कुछ दूर उन्होंने देखा अग्निके सामने ध्यानमग्न बैठे एक जटा-जूटधारी सन्यासीको। वे उसके निकट जाकर बैठ गये। ध्यान भंग होनेपर उसने आँखें खोलीं। बोला—"तुम कौन हो? इतनी रातमें यहाँ अकेले कैसे बैठे हो?"

अश्विनीकुमारने कहा—"मैं चन्द्रनाथके दर्शन करने आया था। मन्दिर बन्द हो जानेके कारण दर्शन नहीं कर सका।"

सन्यासीने कहा—"पुजारीने भीड़ कम करनेके उद्देश्य से बाहरका दरवाजा बन्द कर दिया है। भीतरका खुला है। चलो मैं तुम्हें दर्शन करा लाऊँ।"

अश्विनीकुमारके मृत देहमें फिरसे प्राणोंका संचार हुआ। उनके अन्तःस्थलसे "धन्य चन्द्रनाथ, धन्य चन्द्रनाथ!" की ध्वनि उठने लगी। सन्यासीका अनुगमन कर वे फिर मन्दिरके दरवाजेपर गये। सन्यासी उन्हें वहाँ बैठाकर कुछ देरको फिर कहीं चले गये। थोड़ी देरमें दरवाजा खुला। अश्विनीकुमारने भीतर प्रवेशकर चन्द्रनाथके दर्शन किये। उनसे वृन्दावनका वास दिलानेकी प्रार्थना की। दर्शन कर लौटे तो सन्यासीने पूछा—"मार्गमें तुमने कुछ आहार भी किया या नहीं?"

अश्विनीकुमारने कहा—"दर्शनके लिये विलम्ब हो जानेके भयसे मैं एक साँससे भागा चला आया हूँ। आहारादि कुछ नहीं किया।"

"तो बाबाके दर्शनकर उपवासी चले जाओगे, यह

ठीक नहीं। बाबाका प्रसाद लेते जाओ।" इतना कह सन्यासीने उन्हें केला, सन्तरा आदि बहुतसे फल लाकर दिये।

दूसरे दिन प्रातः जब वे कलकत्ते लौट रहे थे मार्गमें एक ब्राह्मणसे भेंट हुई। उसने पूछा—"इतने तड़के बाबा चन्द्रनाथके दर्शन किये बिना कहाँ जा रहे हो?"

अश्विनीकुमारने कहा—"दर्शन मैं रातको ही कर चुका। एक सन्यासीने मन्दिरका दरवाजा खोलकर दर्शन कराये और यह प्रसाद दिया।"

ब्राह्मण यह सुनकर विस्मयपूर्वक बोला—"यह तुम क्या कह रहे हो? मैं ही तो मन्दिरका पुजारी हूँ। संध्या समय मन्दिर बन्द कर आया था। अब जाकर खोलूँगा। चाबी मेरे पास है। और फल तो वहाँ एक भी नहीं था। निश्चय ही तुम्हारे ऊपर चन्द्रनाथकी कृपा हुई है। उन्होंने तुम्हें दो बार दो रूपमें दर्शन देकर कृतार्थ किया है।"

बाबा चन्द्रनाथकी कृपासे शीघ्र अश्विनीकुमारके वृन्दावन प्रत्यागमनकी संभावना प्रकट होने लगी। कुछ ही दिन पूर्व उन्होंने पत्नीके आभूषण बेचकर अपना स्वतन्त्र कारोबार आरम्भ किया था। कारोबार आशातीत रूपसे सफलतापूर्वक चलने लगा। लड़के भी सक्षम हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि उनके बिना ही वे अपना पोषण ठीकसे कर सकेंगे। वृन्दावनसे आनेके चार साल बाद वे फिर लड़कोंपर कारबारका सारा भार छोड़ वृन्दावन चले गये।

वृन्दावन आनेके कुछ ही दिनों बाद अश्विनीकुमारको स्वप्नादेश द्वारा श्रीश्रीगोपीजनवल्लभकी जुगलमूर्ति प्राप्त हुई। अपने कारबारके लाभांशमेंसे कुछ धन मँगवाकर उन्होंने एक मन्दिरका निर्माण किया। एक पुजारी और एक टहलुआ द्वारा ठाकुर-सेवाकी व्यवस्था की। स्वयं भी सेवा-कार्यमें सहायता करने लगे।

मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय उनकी माँ वृन्दावन आयीं। नियम-सेवाके पश्चात् हठात् बीमार पड़ गयीं। चिकित्साके लिए उन्हें कलकत्ते ले जाया गया। अश्विनीकुमारने पिताकी अनुमति प्राप्तकर श्रीमद्भागवत पाठ और कीर्तनकी व्यवस्थाकी। पाठ समाप्त होते ही माँने आग्रह किया उन्हें गंगा तटपर ले जानेके लिए। उन्हें गंगा तटपर ले जाकर उनके आदेशानुसार गंगाका जल स्पर्श करते हुए लिटाया गया। गंगा स्पर्श होते ही उनके प्राण-पखेरू साधनोचित धामको उड़ गये।

कुछ दिन बाद वृद्ध नन्दीमहाशय वृन्दावन गये। मन्दिरमें सेवा आदिकी व्यवस्था देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी ओरसे वहाँ नित्य २० मूर्तियोंकी अतिथि-सेवा और एक दातव्य चिकित्सालयकी व्यवस्था की। अश्विनीकुमारने स्वयं अभावग्रस्त वैष्णवोंके अनुपान और पथ्यकी व्यवस्थाकी। वे नित्य वैष्णव-सेवाके स्थानको अपने हाथसे परिष्कार करते। वैष्णव-सेवामें उनका इतना अभिनिवेश था कि प्लेगके दिनोंमें भी वैष्णव-सेवा छोड़कर कहीं नहीं गये।

इस बीच उन्होंने सिद्ध श्रीतोतारामदास बाबाजीके अनुगत श्रीरूपदास बाबाजीसे भजन-प्रणाली सीखी और उसीके अनुसार भजन करने लगे।

थोड़े दिन बाद उनके पिताका भी देहान्त हो गया। उस समय उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा। पारिवारिक धन-सम्पत्तिकी समुचित व्यवस्था कर वे वृन्दावन लौट आये। प्रथम बार वृन्दावन आनेके समय जिस सब कार्यके लिए घर लौट जानेका उन्हें स्वप्नादेश हुआ था, वह पूरा हो गया। वृन्दावन लौटकर उन्होंने श्रीगौरशिरोमणि महाराजके कृपापात्र श्रीहरिचरणदास बाबाजीसे वेश ग्रहण किया। नाम हुआ श्रीकृष्ण-चैतन्यदास। वेश लेनेके पश्चात् उन्होंने कुछ दिन कुसुमसरोवरपर भजन किया। फिर राधाकुण्ड जाकर रहने लगे।

श्रीकृष्ण-चैतन्यदास बाबाके वेशाश्रयके पश्चात् उनके पुत्र गौरबाबूके हृदयमें भी श्रीधाम वृन्दावन-वास करनेकी इच्छा जागी। वे वृन्दावन जाकर अपने श्रीगोपीजन-वल्लभकी सेवामें रहने लगे।

राधाकुण्डमें रहते समय श्रीकृष्णचैतन्य बाबाको श्रीगोपीजनवल्लभीकी सेवाकी पूरी चिंता रहती। यदि सेवामें कोई त्रुटि होती, तो बिना किसीके बताये ही उन्हें पता चल जाता। एक बार उन्होंने गौरबाबूको वृन्दावन से बुलाया और कहा—"तुम श्रीगोपीजनवल्लभकी सेवा करते हो, पर किसी बातका ध्यान नहीं रखते। एक दिन भोगमें बाल पड़ जानेके कारण भोग नष्ट हो गया, और

एक दिन भोगके थालमें जूठन लगी रह गयी, इसलिये भोग नहीं लगा। ठाकुर-ठकुरानीको उपवासी रहना पड़ा।"

"देखो, ठाकुरको मानो, तो वे उसी रूपसे हमारी सेवा ग्रहणकर प्रसन्न होते हैं, न मानो तो कुछ नहीं। तुम्हें एक प्रत्यक्ष घटना सुनाऊँ। तड़ास स्टेटके राजर्षि बनमाली बहादुरके ठाकुर श्रीराधाविनोदजी जब राधाकुण्ड रहते थे, तो गरमीके दिनोंमें उन्हें २४ घंटे पंखा करनेके लिये टहलुए रखे जाते थे। एक भक्त, जिसे दृढ़ विश्वास था कि ठाकुर इस सेवासे सुखी होते हैं नित्य रात्रिमें मन्दिरका ताला लगनेसे पूर्व मंदिरमें जाता और बीच-बीचमें स्वयं पंखा खींचकर टहलुओंको विश्राम देता। एक दिन मध्य रात्रिमें पंखा खींचते-खींचते उसे नींद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि विनोदजी उसका हाथ स्पर्श कर कह रहे हैं—'तुम सो रहे हो। मुझे बड़ा गरम लग रहा है। मुझे कुण्डके किनारे ले चलो।' वह विनोदजीको कंधेपर बिठाकर कुण्डपर ले जाने लगा। उसके कंधेपर एक रसौली थी। विनोदजीने कहा—'तेरे कंधेपर यह क्या है, जो मेरे गड़ रहा है?' कहते हुए उन्होंने बैठनेका स्थान अपने हाथसे सफा कर दिया। भक्तने उन्हें कुण्डके तीरपर लेजाकर एक स्थानपर बैठा दिया। स्वयं वहीं सो गया। उसी समय उसकी नींद भंग हो गयी। उसने देखा कि वह कुण्डके किनारे लेटा है। यह देखकर वह अवाक्! उठकर मंदिरपर गया तो देखा ताला पूर्ववत् बन्द है। और भी आश्चर्यकी बात यह कि उसका दाहिना

कन्धा, जिसपर वह विनोदजीको लाया था, उनके स्पर्शसे शीतल हो रहा है। उसपर हाथ फेरा तो देखा कि रसौली गायब है!"

राधाकुण्डमें बाबाने एक पुरश्चरण किया। उसके पश्चात वे चन्द्रसरोवर चले गये। वहाँ एक और पुरश्चरण किया।

चन्द्रसरोवर रहते समय वे नित्य प्रातः ३ बजेसे गोवर्धन-परिक्रमा करते। एक दिन परिक्रमा करते समय जोरकी वर्षा होने लगी। उन्होंने एक वृक्षकी शरण ली। जहाँ वे बैठे थे एक बिलके भीतरसे साँपके फुफकारनेका शब्द हुआ। फिर भी वे बैठे नाम-जप करते रहे। उन्हें विश्वास था कि व्रजका कोई जीव उन्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकता। उसी समय कहीं दूरसे किसीने एक कम्बल फेंका और कहा—"बाबा तोको स्याँपको भय नाँय। भाग जा, काट खायगो।" कण्ठ-स्वर किसी महिला का था। पर बाबाको कोई दीख नहीं रहा था। उन्होंने कम्बलको प्रसादी जान मस्तकसे लगाया और उसे ओढ़-कर परिक्रमा-पथपर चल दिये। वृष्टि भी क्रमशः कम हो गयी।

चन्द्रसरोवरपर बाबा एक बुर्जीके ऊपर बनी कुटियामें भजन किया करते थे। वहाँ उनका भजनमें अभिनिवेष इतना बढ़ गया कि वे घण्टों बाह्यज्ञानशून्य हो कुटियामें पड़े रहते। एक बार उनके गुरुदेव श्रीहरिचरण बाबा श्रीसनातनदास बाबाको साथ ले उनकी कुटियापर पधारे।

कुटियाका दरवाजा भीतरसे बन्द था। 'राधे, राधे' कहकर कई बार आवाज दी। पर कोई नहीं बोला। दस-पन्द्रह मिनट रुककर फिर 'राधे, राधे' कहकर जोरसे पुकारा। फिर भी कोई उत्तर नहीं। सनातनदास बाबाको श्रीकृष्णचैतन्य बाबाके सम्बन्धमें चिन्ता होने लगी। पर हरिचरण बाबाने कहा—"चिन्ताकी कोई बात नहीं। वह अकसर लीला-चिन्तनमें डूब जाता है, तो उसे घण्टों तक बाह्य-ज्ञान नहीं रहता। चलो, फिर आयेंगे।"

एकबार बाबाने गौरको बुलाकर कहा—"देखो, ११ दिनका एक बड़ा उत्सव करना है। नित्य कीर्तन और रासलीला होगी। भागवत-सप्ताह होगा। बहुतसे वैष्णवों को उत्सवमें आमन्त्रित करना होगा। उनके आवास और प्रसादकी व्यवस्था करनी होगी। कीर्तनके लिये कीर्तनिया श्रीभक्तिचरणदास बाबाजीको आमन्त्रित करना होगा और भागवत-सप्ताहके लिये श्रीमद्भागवत-पाठक श्रीमधुसूदनभट्टजीको।"

तदनुसार उत्सवकी व्यवस्थाकी गयी। गाँव-गाँवसे लोग आने लगे। चन्द्रसरोवरपर ११ दिन तक मेला-सा लगा रहा। दसवें दिन ७ कोस तकके सभी व्रजवासियों और महात्माओंको प्रसादके लिये आमन्त्रित किया गया। कई दिनसे उस विशाल आयोजनके लिये व्यवस्थाकी जा रही थी। पर उस दिन प्रातःकाल हठात् बाबाका बोल बन्द हो गया। यकायक चारों ओर अन्धकार छा गया। आनन्द और उल्लासका वातावरण विषादमें परिणत

हो गया। विषन्न मनसे सबने देर तक शरीरमें किसी प्रकारका स्पन्दन होनेकी प्रतीक्षाकी। पर उन्हें निराश होना पड़ा। अन्तमें बाध्य हो अन्तिम संस्कारकी तैयारी की जाने लगी। कीर्तनके साथ सरोवरकी परिक्रमा कर उन्हें श्मशान ले जाया गया। श्मशानके निकट पहुँचते ही अति क्षीण कण्ठसे उनकी आवाज सुनाई पड़ी—"मुझे कहाँ लिये जा रहे हो? मैं जहाँ था वहीं ले चलो।"

यह सुन सब लोग चमत्कृत हो गये। उच्च स्वरसे हरिध्वनि करते हुए उन्हें उत्सवके स्थानपर ले गये। विषादके बादल जैसे यकायक आये थे, वैसे ही छट गये। आकाश-बतास फिर आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। गीता-पाठ और प्रसाद वितरणके पश्चात् उत्सव निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

कहते हैं कि बाबाने इस अवसरपर स्वेच्छासे गोलोक-धाममें अपने इष्ट श्रीश्रीगोपीजनवल्लभके निकट जानेका निश्चय किया था। उसी उपलक्ष्यमें श्रीमद्भागवत-पाठ और कीर्तनादिके पश्चात् वैष्णव-सेवाका आयोजन किया था। अपने निश्चयके अनुसार ही वैष्णव-सेवाकी पूरी तैयारी हो जानेपर उसके ठीक पूर्व उन्होंने प्रयाण किया था। पर स्वयं राधारानीके अनुरोधपर उनके किसी उद्देश्य की पूर्तिके लिये कुछ दिनोंको इस जगत्में लौट आनेको विवश हुए थे।

एक बार किसी भक्तके पूछनेपर—"क्या काल भजन-

शील व्यक्तिपर भी उसी तरह आक्रमण करता है जिस तरह साधारण लोगोंपर ?" उन्होंने कहा था—

"ठीक उसी प्रकार नहीं। साधारण व्यक्तिका जीवन-काल पूरा होनेपर काल तत्काल उसे ले जाता है, उसकी स्थिति उस समय चाहे जैसी हो। पर भक्तका समय पूरा होनेपर वह उसके सम्मुख जाकर हाथ जोड़कर इसकी सूचना भर दे देता है। उसकी इच्छा होती है तो चला जाता है, इच्छा नहीं होती और कुछ दिन इस जगतमें रह-कर भजन करना चाहता है, तो नहीं जाता। काल अभक्त का शत्रु होता है, भक्तका सेवक। बिल्ली जिस मुखसे चूहेको ले जाती है, उसीसे अपने बच्चेको भी ले जाती है। वह चूहेके लिये कालरूप होती है, बच्चेके लिये माँ। चूहेको खा जाती है, बच्चेको सुरक्षित और सुखमय स्थानपर ले जाकर रख देती है।"

इस घटनाके बादसे श्रीकृष्णचैतन्यदास बाबाकी ख्याति और भी बढ़ गयी। बुर्जीपर दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगने लगी। घबराकर वे एक दिन रातमें एकान्त-भजनके उद्देश्यसे शेषशायी चले गये। कुछ दिन बाद वहाँ भी लोगोंने उन्हें घेरना शुरू किया, तो बांशो नामक ग्राममें चले गये।

इसी बीच बहुतसे लोग दीक्षा देनेके लिये उनसे आग्रह करने लगे। वे किसी प्रकार दीक्षा देनेको राजी न हुए। पर गुरुदेवके आदेशसे उन्हें श्यामापद नामके एक व्यक्ति और उनकी बहिन राधादासीको दीक्षा देनी पड़ी। उसके

पश्चात् उन्होंने गोवर्धनके स्पेशल मैजिस्ट्रेट श्रीकुमार-साहब, गोवर्धनके ही श्रीकुमार सज्जनप्रसादसिंह आदि कई और लोगोंको दीक्षा दी।

जिस दिन श्रीसज्जनप्रसादसिंह और उनके कई साथियोंको दीक्षा दी, उसी दिन रातमें कुटीमें विशेष कुछ प्राप्त करनेके लोभसे चोरोंने प्रवेश किया। बाबाने उनकी आहट पाकर समझा कि ग्रामवासी आये हैं। उनसे चरणामृत लेनेको कहा। चरणामृत लेते ही उनकी बुद्धि पलट गयी और वे दिशाहारा हो गये। जूता-लाठी छोड़कर किसी प्रकार कुटियासे भाग निकले।

चन्द्रसरोवरपर श्रीश्यामापद और श्रीकुमारसाहबने अपने व्ययसे बाबाके आश्रमके रूपमें कुछ कुटियोंका निर्माण किया। बाबा वहाँ रहने लगे। वहाँ रहते समय वे नित्य गोवर्धन परिक्रमा करते। एक दिन जब वे नाम-जप करते-करते धीरे-धीरे परिक्रमा-पथपर जा रहे थे, तीन अल्प-वयस्का रमणियाँ उनके पीछे-पीछे जा रही थीं। उनमेंसे एकने कहा—"डोकरा हटे नाँय रस्ता ते।" उसी समय दूसरीने कहा—"अरी जान दे बाबाको। कायकूँ बासे ऐसे कहे?"

युवतीका अश्रुतपूर्व करुणा-मिश्रित अपार्थिव स्वर सुन बाबा अभिभूत हो गये। भावावेशसे विह्वल हो वे मार्गके एक ओर जा खड़े हुए। एक अपार्थिव आनन्दसे उनके मन-प्राण भर गये। कुछ ही क्षण बाद प्रकृतिस्थ हो जब उन्होंने सामने देखा, तो तीनों अन्तर्धान हो चुकी थीं।

सन् १९३० के फाल्गुन मासमें बंगदेशके श्रीराखालदास कुंडू उनके पास आकर बोले—'ऐसा कोई गर्हित कर्म नहीं, जो मैंने अपने जीवनमें न किया हो। अब कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रही। पर कालकी चिंता हर समय सताती रहती है। न जाने मेरी क्या गति होगी। मुझे क्या करना चाहिए? जिसमें मेरा हित हो ऐसा उपदेश करनेकी कृपा कीजिये।

बाबाने पूछा—"आपकी लौटकर देश जानेकी इच्छा है क्या?"

"नहीं, बिलकुल नहीं। पर मेरे जैसे अपराधी व्यक्ति पर धामकी कृपा हो सकती है क्या?"

"क्यों नहीं? आपको इस उम्रमें और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भागवत्का एक पारायण सुन लें और श्रद्धापूर्वक नाम-जप करते हुए धाममें पड़े रहें। व्रजधाममें श्रद्धाकर पड़े रहना ही एक बड़ा साधन है। ब्रह्माने व्रज-वासको सर्वोच्च साधन जानकर ही व्रज-वासकी प्रार्थना की थी। उद्धव, वृहस्पतिके शिष्य, श्रीकृष्णके सखा और मन्त्री, जिनकी श्रीमद्भागवतके तीन श्रेष्ठ हरिदासोंमें गिनतीकी गई है, उन्होंने भी व्रज-वासकी प्रार्थना की थी। इसलिये आप निश्चिन्त हो व्रजवास करें। राधारानी अवश्य आपपर कृपा करेंगी।"

कुंडू महाशय सफल मनोरथ हो वृन्दावन जाकर निष्ठा सहित नाम-जप करते हुए वहाँ रहने लगे। ज्येष्ठ पुत्रको कलकत्तेसे बुलाकर श्रीमद्भागवत-पारायणकी व्यवस्था की।

भगवत्कृपासे सप्ताह निर्विघ्न समाप्त हुआ। उसके कुछ ही दिन बाद स्वस्थ और सज्ञान अवस्थामें नाम करते-करते उन्हें नित्य-धामकी प्राप्ति हुई।

सन् १९३१ में गौरबाबूने वृन्दावनमें गोपीनाथबागमें एक अति मनोरम मन्दिरका निर्माण किया। श्रीगोपीजन-वल्लभको उसमें विराजमान कराया। उसके उपलक्ष्यमें एक उत्सव किया। बाबा भी उत्सवमें सम्मिलित हुए। तदुपरान्त उन्होंने गिरिराजकी दण्डवती परिक्रमा करनेका अभिप्राय प्रकट किया। ३-४ सेवकों और तम्बू आदिकी व्यवस्था की गयी। परिक्रमा सम्पन्न होनेपर बाबा हरनिया रोगसे आक्रान्त हो शेषशायी चले गये।

शेषशायीमें उनका नाथू नामका एक शिष्य रहता था। फसल काटनेसे सम्बन्धित एक झगड़ेमें उसके आदमियोंसे एक व्यक्तिकी हत्या हो गयी। नाथूको जेल जाना पड़ा। जमानतपर छूटनेपर वह बाबाजी महाराजके चरणोंमें लोट गया। बाबाने कहा—"मैं क्या करूँ? कर्मका फल तो भोगना ही होगा। पर फाँसी नहीं होगी।"

मुकदमा चला। अन्तमें उसे आजीवन कारावासकी सजा सुना दी गयी। बाबाको सम्वाद मिला, तो उन्होंने कहा–"चिन्ताकी कोई बात नहीं। वह मुक्त हो जायगा।" कुछ दिन बाद किसी राजकीय खुशीके उपलक्ष्यमें वह मुक्त हो गया।

सज्जनप्रसादसिंहने एक बार गोवर्धनमें नाम-यज्ञके

पश्चात् नगर-कीर्तन और वैष्णव-सेवाका बड़ा आयोजन किया और बाबासे उत्सवमें योगदान करनेका बार-बार अनुरोध किया। बाबाने कहा—"उत्सवके लिये तो आग्रह करो नहीं। पर अपराह्न ४ बजे वहाँ पहुँचकर नगर-कीर्तनमें मैं अवश्य सम्मिलित हो जाऊँगा।"

नगर-कीर्तनके समय वे वहाँ पहुँच गये। कीर्तन जब मानसगंगा के निकट पहुँचा आकाश-मण्डल कीर्तनकी इस ध्वनिसे परिपूर्ण हो गया—

निताइ-गौर सीतानाथ एई बार आमाय दया कर हे।
आमार गौरांगेर गुने बनेर पशु-पाखी झुरे॥

इस मर्मस्पर्शी ध्वनिको सुन बाबाके धैर्यका बाँध टूट गया। वे भावविभोर हो उद्दण्ड नृत्य करने लगे। आध-घण्टे तक लगातार नृत्यमें दो-दो हाथ ऊपर उछलते रहे। यह देख सबको चिन्ता हुई। हरनियाँ रोगके कारण उनका इतना परिश्रम करना खतरेसे खाली नहीं था। उन्हें बैठा देनेकी बहुत चेष्टाकी गयी। पर उसका कोई असर न हुआ। नगर-कीर्तन समाप्त कर जब वे प्रकृतिस्थ हुए, उन्हें गाड़ीसे चन्द्रसरोवर पहुँचा दिया गया।

यशोहर निवासी श्रीब्रजमोहनदासजी वेशाश्रयके पश्चात् चन्द्रसरोवरमें बाबाकी कुटियाके समीप दूसरी कुटियामें रहकर उनकी सेवा करने लगे। एक दिन उन्होंने बाबासे स्मरण-मननके विषयमें जानना चाहा। बाबाने उत्तरमें इस सम्बन्धमें दो महापुरुषोंके विचार प्रकट करते

हुए कहा—"बहुत दिनोंकी बात है। उस समय पं० राम-कृष्णदास बाबा गोवर्धनमें ग्वाल पोखरामें भजन करते थे। एक दिन मैंने उनके निकट जाकर अष्टकालीन स्मरणके विषयमें शिक्षा देनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'यदि और कोई मुझसे अष्टकालीन स्मरणकी शिक्षा माँगता तो मुझे उसके गालपर चाँटा मारनेमें संकोच न होता। उनका अभिप्राय समझकर मैं उनसे और कुछ कहनेका साहस न कर सका। स्मरण-मनन कोई सहज बात नहीं।

एक बार कालीदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाके निकट जाकर दो व्यक्तियोंने अष्टकालीन स्मरणकी शिक्षा के लिए निवेदन किया। बाबा मौन रहे। मौनको सम्मतिका लक्षण जान वे नित्य उनके पास जाने लगे। नित्य भक्ति-विषयक नाना प्रकारकी आलोचना होती, पर अष्ट-कालीन लीला-स्मरणके विषयमें बाबा कुछ न कहते। इस-लिए वे अभीष्ट विषयकी शिक्षाके लिए अन्यत्र जाने लगे। एक-दो दिन छोड़कर बाबाके पास भी जाते। एक दिन उन्होंने अति मृदु स्वरमें उनसे पूछा-"बाबा, स्मरण-मनन किस प्रकार चल रहा है ?"

यह सुन उन्हें आश्चर्य हुआ। यह जानकर कि उनसे कुछ छिपा तो है नहीं, उन्होंने इस बातको स्वीकार करते हुए कहा—"आपकी कृपासे कुछ-कुछ हो रहा है।"

दो-चार दिन बाद फिर उन्होंने पूछा—"क्यों स्मरण-मनन खूब चल रहा है न ?"

उन्होंने उत्तर दिया—'आपकी कृपासे चल तो रहा है, पर कुछ ऐसे ही।'

उनकी स्पष्टोक्ति सुन वे प्रसन्न होकर बोले—'बाबा, मरण बिना स्मरण कहाँ ? जब तक इस जगत्‌का सबकुछ भूल नहीं जाता और देह-स्मृतिका लोप नहीं हो जाता तबतक क्या उस जगत्‌का स्मरण सम्भव है ?''

बाबा अब वृद्ध हो गये थे। फिर भी उनकी नियम-निष्ठामें कोई अन्तर नहीं पड़ा था। अब भी वे पहलेकी तरह चाहे कितनी ठंड पड़ रही हो रात दो बजे उठकर चन्द्र-सरोवरमें स्नान करते थे और कुटियाका दरवाजा बन्द कर भजनमें बैठ जाते थे। पर अब जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उनकी विरहाग्नि प्रबल होती जा रही थी। वे एक बार नित्य-धाम जाकर लौट आये थे। तबसे उन्हें राधारानीके दर्शन शायद फिर नहीं हुए थे। वे उनके दर्शनके बिना इतना अधीर हो उठे थे कि उन्हें जीना भी दुष्कर लग रहा था।

उन दिनों एक ब्रजवासी ब्राह्मण, जो उनका शिष्य था, नित्य ब्रह्म मूहुर्तमें चन्द्रसरोवरमें स्नान करते आया करता था। स्नानके पश्चात् उनकी कुटियाके सामने दण्डवत् कर 'जय राधे !' कहा करता था। बाबा भी कुटियाके भीतरसे 'जय राधे !' कह उसकी दण्डवत् स्वीकार किया करते थे। एकदिन जब उसने दण्डवत् कर

'जय राधे !' कहा, तो उसे कोई उत्तर न मिला। बार-बार 'जय राधे !' कहनेपर भी जब उसे उत्तर न मिला, तो उसे चिंता होने लगी। निकट ही कुटियामें एक और महात्मा भजन करते थे। उनके पास जाकर उसने अपनी चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा—"श्रीकृष्ण-चैतन्यदास बाबाके लिए यह कोई असाधारण बात नहीं। वे अकसर लीलामें डूब जाते हैं और ज्ञान-शून्य अवस्थामें घन्टों पड़े रहते हैं। पर इसबार एक असाधारण बात यह है कि रात मैंने उनकी कुटियासे एक प्रकाश विकीर्ण होते देखा। न जाने वह कैसा प्रकाश था। मैंने उनकी कुटियामें कभी दीपक जलते तो देखा नहीं। रोज जब वे चन्द्रसरोवरमें स्नान करने जाते, तो उनकी कुटियाका दरवाजा खोलने और बन्द करनेकी आवाज मुझे सुनाई पड़ती। आज मैंने वह भी नहीं सुनी। इसलिये थोड़ी चिंता होती है।"

दोनोंने परस्पर विचार करनेके पश्चात् कुछ देर प्रतीक्षा करनेका निश्चय किया। पर बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् बार-बार 'जय राधे' करनेपर भी जब कोई उत्तर न मिला, तो उनकी चिंता बहुत बढ़ गयी। उन्होंने गाँव वालोंको बुलाकर किसी प्रकार कुटियाका दरवाजा खोला, तो देखा कि वे स्पन्दनहीन अवस्थामें अचेतन पड़े हैं, पर श्वास धीरे-धीरे चल रहा है।

सबने मिलकर कीर्तन प्रारम्भ किया। संध्यातक कीर्तन चलता रहा। फिर भी बाबाकी अवस्थामें कोई परिवर्तन होता न दीखा। उसी समय पानकी बीड़ी हाथ

में लिए बरसानेके गोस्वामीका एक बालक भागता आया। उसने पूछा—"बंगाली बाबा, जिनके प्राण निकसबेको है रहे हैं कहाँ हैं ?"

"बाबा भीतर कुटियामें हैं," बाहर खड़े कुछ लोगोंने कहा।

वह कुटियामें जाते ही बोला—"जा पानकी बीड़ी बाबाकूँ खवाय देओ। श्रीजीने पाठाई है। कल रात बिनने स्वप्नमें मोंते कही—"चन्द्रसरोवर बारो बंगाली बाबा मेरो दर्शन सहन नाँय कर सक्यौ। वाके प्राण जायबेको हैं! बाको मेरी प्रसादी बीड़ी खवाए देओ, तौ जी उठैगो।"

पानकी बीड़ी जैसे ही बाबाके मुखसे स्पर्श कराई गयी वे 'जय राधे !' कहते हुए उठ बैठे।

पर कई महीने तक बाबा अप्रकृतिस्थ रहे। दिव्योन्माद की-सी अवस्थामें वे कभी हँसते, कभी रोते, कभी मूर्छा खा गिर पड़ते। लोग उसे मानसिक व्याधि समझ उन्हें कुसुमसरोवरपर ग्वालियरवाले मन्दिर ले गये, वहाँ उन्हें रखकर कुछ दिन राधाकुण्डके किसी वैद्यसे इलाज करानेके उद्देश्यसे। मन्दिरमें ग्वालियरके राजाके भाईकी ओरसे साधु-सेवाकी व्यवस्था थी। वहाँ पहुँचते ही बाबा चीख उठे—"मैं राजाका अन्न नहीं खाऊँगा। मुझे यहाँसे ले चलो।"

विवश हो उन्हें चन्द्रसरोवरपर लौटा लाया गया। धीरे-धीरे उनका दिव्योन्माद जाता रहा। कदाचित् उनके विरहानलको शान्त करनेके लिए राधारानीने उन्हें दर्शन

दिये थे, पर अभी भी अपने किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्हें कुछ दिन और भू-लोकमें रखना चाहा था।

कुछ दिन और बीते बाबाको भजन करते और अपने आचरणसे लोगोंको भजनकी शिक्षा देते। आखिर वह समय निकट आ गया जब राधारानीको उन्हें अपनी सेवामें ले लेना था। बाबाको इसका संकेत मिल गया।

इसलिये अब साल भरसे वे केवल दूध पीकर रह रहे थे। कथा-प्रसंगमें कहा करते थे—"अब और अधिक इस शरीर का भार वहन करना ठीक नहीं।" उन्होंने सोचा एकबार जहाँ-जहाँ उनके प्रेमी जन हैं वहाँ हो आयें। वे शेषशायी, वांशो ग्रामादि जाकर और कहीं दो महीने, कहीं चार महीने, रहकर लौट आये। ब्रजमोहनदाससे बोले—"इस बार सबसे अन्तिम विदा लेकर आया हूँ। विदा होते समय सब बहुत संतप्त थे। पर मैं क्या करता?"

सन् १९४० के श्रावण मासमें श्रीश्यामापद अपनी पत्नी गोविन्ददासीके साथ चन्द्रसरोवर आये। बाबाने कहा—"अच्छा किया जो आ गए और गोविन्ददासीको भी ले आये। बस समझो कि यह हमारा अन्तिम मिलन है।"

नियम-सेबाके कुछ पहले एक दिन श्रीब्रजमोहनदासजी से बोले—"ब्रजमोहन, न जाने इस बार नियम-सेवा पूरी होगी कि नहीं। विशेष कुछ नियम करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं। तुम फूल-तुलसी ले आना। बैठे-बैठे फूल-

तुलसी अर्पण किया करूँगा। इस देहसे अब गिरिराज-परिक्रमा तो सम्भव है नहीं। हो सके तो किसी एक आदमीको ठीक कर लेना। वह तुम्हारे साथ परिक्रमा कर आया करेगा। उसकी यथासंभव सेवा कर दी जायगी। एक भागवत्-सप्ताह भी सुन लूँगा। भागवत्-सप्ताहमें आगेसे ही मेरा न जाने कैसा एक दृढ़ विश्वास है। उसकी फल-श्रुतिमें जो भी लिखा है उसका एक-एक अक्षर सत्य लगता है।"

पीछे एक दिन ब्रजमोहनदासको निकट बुलाकर उन्हें एक डोर-कौपीन देते हुए बोले—"इसे मेरे आशीर्वाद स्वरूप श्यामापदको देना। मेरा दूसरा कौपीन यदि गौर आग्रह प्रकाश करे तो उसे देना। मेरे शेष समयपर एक बात मत भूलना। वृन्दावनके सातों देवालयोंका चरणामृत और व्रजके विभिन्न स्थानोंकी रज अवश्य देना।"

यह सुन ब्रजमोहनदास अत्यन्त चिंतित हुए। नियम-सेवाके कुछ ही दिनों बाद एक दिन संध्या-समय बाबाको ज्वर हुआ। दूसरे दिन प्रातः वृन्दावन संवाद भेजा गया। वहाँसे गौर बाबू और अन्य लोग आ गये। बाबाने सबके सिरपर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया और वृन्दावन लौट जानेको कहा। पर सब वहीं रह गये। बाबाकी अवस्था खराब होती गयी। कार्तिक कृष्णा सप्तमीको संध्या समय कीर्तन आरम्भ हुआ। दूसरे दिन सन् १९४० की अरिष्टाष्टमीको प्रातःक्षीण स्वरसे नामोच्चारण करते-करते उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

उस समय श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज वृन्दावन में राधारमणकी बगीचीमें भजन कर रहे थे। उन्होंने देखा एक दिव्य ज्योतिको आकाशमें जाते हुए !

श्रीवैष्णवदास बाबाजी

(कोसी)

जिस समय काम्यवनमें सिद्ध जयकृष्णदास बाबाजी महाराज भजन करते थे, उस समय कोसीमें श्रीवैष्णवदास बाबाजी भी भजन करते। वे गौड़ीय-वैष्णव होते हुए भी एक लोहेका चिमटा रखा करते। सदा वृक्षके नीचे वास करते। मधुकरीका झोला वृक्षमें लटका दिया करते।

बाबा वाक्सिद्ध थे। शृंगारवटके श्रीश्रीनित्यानन्द-सन्तान श्रीपूर्णानन्द गोस्वामी प्रभुके कोई सन्तान न थी। उन्हींके आशीर्वादसे उन्हें श्रीनृसिंहानन्द, श्रीप्रेमानन्द और श्रीयादवानन्दके रूपमें तीन पुत्र प्राप्त हुए थे।

उनकी महिमा सुन एक बार जोधपुरके राजा उनके पास गये। कुछ सेवा स्वीकार करनेका बहुत अनुरोध किया। वे बराबर यही कहते रहे—"मुझे किसी प्रकारकी

सेवा नहीं चाहिए।" पर राजाने अपना हट नहीं छोड़ा। तब विवश हो उन्होंने राजासे कर मन्दिर बनवाकर श्रीराधा-गोविन्दकी सेवा प्रतिष्ठित करनेको कहा।

राजाने उनकी आज्ञाका पालन किया। उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधा-गोविन्दकी सेवा कोसोमें आज भी चल रही है।

बाबाकी महानताका पता इस बातसे चलता है कि गोवर्धनके सिद्ध कृष्णदास बाबा उनका भी उसी प्रकार सम्मान करते थे, जिस प्रकार काम्यवनके सिद्ध श्रीजय-कृष्णदास बाबाका।[१]

---

१. यह वृतान्त लगभग ५० वर्ष पूर्व श्रीअद्वैतदास पंडित बाबाजीने श्रीहरिदास दासको सुनाया था और उन्होंने अपने बंगला-ग्रन्थ "गौड़ीय-वैष्णव-जीवन" में इसका उल्लेख किया है।

नन्दग्रामके एक सिद्ध बाबा

(नन्दगाँव)

जिस समय काम्यवनमें सिद्ध श्रीजयकृष्णदास बाबा और कोसीमें सिद्ध श्रीवैष्णवदास बाबा भजन करते थे, उस समय नन्द ग्राममें पौर्णमासी कुण्डके तीरपर एक वृक्ष के नीचे एक सिद्ध बाबा रहते थे। वे गोवर्धन शिलाकी सेवा करते थे। गोवर्धन-शिला एक कपड़ेमें बाँध कंठसे लगा कर रखते थे। मल-मूत्र त्याग करते समय या स्नानादि करते समयभी गिरिराजजी उनके कठसे ही लगे रहते थे।

भजनावेशमें कभी-कभी वे दो-तीन दिन तक लगातार अन्तर्दशाविष्ट रहते थे। उस समय उन्हें कुछ भी बाह्य-ज्ञान नहीं रहता था। उस समय मल-मूत्र त्याग, स्नान और आहारादि भी नहीं होता था। बाह्य-ज्ञान होनेपर वे स्नानादि कर सेवा और आह्निकादि करते थे। उनके निकट उनके अनुगत जो वैष्णव रहते थे वे पाक करते थे और बाबा गिरिराजजीका भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते थे।

आहारकी सामग्री कहाँसे आती थी कोई नहीं जानता था। भोग इतने परिमाणमें लगता था कि जो वैष्णव वहाँ आ जाते थे, वे भी प्रसाद ग्रहण करते थे। उन्हें स्वतंत्र रूप से प्रसादके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती थी।[1]

---

१. यह वृतान्त भी श्रीअद्वैतदास पंडित बाबाजीने श्रीहरि-दासदासको सुनाया था।

पंडित श्रीजगदानन्ददास बाबाजी

(राधाकुंड)

श्रीजगदानंददास बाबा काम्यवनके सिद्ध जयकृष्णदास बाबा और गोवर्धनके सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबाके समकालीन थे। सम्भवत: बंगालके फरीदपुर जिलेका उनका जन्म था। इसी जिलेके रामदीया ग्रामके अखाड़ेके महन्त श्रीभववान्‌दास बाबाजीसे वेश ग्रहण कर वे १८-१६ वर्ष की अवस्थामें ही वृन्दावन चले आये थे। उन्होंने कब, कहाँ और किससे विद्याध्ययन किया, कुछ पता नहीं। पर यह सच है कि वे बहुत बड़े विद्वान् थे। उस समय गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें उनके जोड़का दूसरा पंडित नहीं था। बहुतसे लोगोंने उनसे शास्त्र-अध्ययन किया। श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय द्वारा आविष्कृत गराणहाटी-कीर्तनके उस समयके अद्वितीय गायक और हरिनामामृत-व्याकरणके अध्यापक श्रीअद्वैतदास पंडित बाबाजी भी उन्हींके शिष्य थे।

उनका श्रीजयकृष्णदास बाबा, श्रीकृष्णदास बाबा और सूर्यकुण्डके श्रीमधुसूदनदास बाबासे बड़ा सौहार्द था। श्रीकृष्णदास बाबासे उनका प्रेम-कलह अकसर हुआ करता था।

वे बड़े धाम-निष्ठ संत थे। धामने एक बार बड़े विचित्र ढंगसे उन्हें अपनी महिमाका दिग्दर्शन कराया था।

वे उस समय राधाकुण्ड रहते थे। एक दिन संध्या समय वे सूर्यकुण्डके लिए चल पड़े। सूर्यकुण्ड राधाकुण्डसे ३-४ मील उत्तरमें है। कुल एक घण्टेका रास्ता है। पर उनके सूर्यकुण्ड पहुँचते-पहुँचते सबेरा हो गया। वे न रास्तेमें कहीं रुके, न रास्ता भूले। उन्हें देख मधुसूदनदास बाबाने कहा—"इतना सबेरे कहाँसे चले आ रहे हैं।"

"सबेरे ? ! क्या सबेरा हो गया ? मैं अभी संध्या समय तो राधाकुण्डसे चला हूं!" जगदानन्ददास बाबाने आश्चर्यसे चारों ओर देखते हुए कहा।

मधुसूदनदास बाबा बोले—"आपको धामने कृपाकर अपनी कमलकी-सी संकोच और विकाशकी शक्तिका परिचय दिया है। आपतो शास्त्रज्ञ हैं। जानते ही हैं कि धाममें देश और काल लीला-शक्तिके अधीन हैं और लीलाके प्रयोजनके अनुसार संकोच और विकासको प्राप्त होते रहते हैं।"

ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरण देवजी

(वृन्दावन)

जयपुर राज्यके सवाई माधोपुरके निकट लसोड़ा ग्राम है। वहाँ महोवतरामजी नामके एक सनाढच ब्राह्मण रहते थे। ऊनके तीन पुत्र थे–नन्दराम, गणेशराम और अमरनाथ। वे एक व्यापारी थे। सामान इधरसे उधर लाने ले जानेके लिए बहुतसे बैल रखते थे। महोवतरामजीके स्वर्गवासके बाद उनके तीनों पुत्र उनका कारबार सम्हालने लगे।

एकदिन गणेशराम बैलोंको जङ्गल चराने ले गये। बैलोंमें एक अग्रणी था, जिसे धौंसाका बैल कहते थे। उसीके पीछे पीछे दूसरे बैल चला करते थे। दैवयोगसे उस दिन एक सिंह उसके ऊपर झपट पड़ा और उसे मार डाला। सायंकाल गणेशरामने घर लौटकर धौंसाके बैलके मारे जानेकी बात कही, तो सबको बड़ा दुःख हुआ।

प्रायः जहाँ सिंहोंका प्रकोप होता है, वहाँके निवासी सिंहका मुकाबला कर लिया करते हैं। यहाँ तक कि वहाँकी स्त्रियाँ भी कभी-कभी सिंहको मार लेती हैं। गणेशराम की भाभी भी बड़े वीर स्वभावको थी। उसने उनसे कहा—"तुम्हारे रहते सिंह बैलको मार गया ! डूब मरने की बात है तुम्हारे लिए।"

गणेशरामको यह बात चुभ गयी। उसने सोचा—भाभी ठीक कहती है। बैल मारा गया मेरी कायरताके कारण ही। मेरे लिए डूब मरना ही अच्छा है।

वह उसी समय गया लसोड़ासे एक मील दूर, जहाँ पर्वतोंके बीच झोझाकी झील है और उसमें कूद पड़ा। भगवत्कृपासे वह मरा नहीं। गाँव वालोंने उसे निकाल लिया। फिर भी वह घर नहीं गया। दैवयोगसे झीलमें उसे एक शालग्रामकी मूर्ति प्राप्त हुई। उसे उसने भगवान्‌का दिव्य संदेश समझा, जिससे उसकी जीवनकी दिशा बदल गयी। वह शालग्रामको ले वृन्दावन चला गया।

उस समय उसकी आयु लगभग १७-१८ वर्षकी थी। उसका जन्म वि. सं. १८५५ माघ शु० ५ को हुआ था। वृन्दावन जाकर उसने वंशीवटके महात्मा श्रीबलदेवदासजी से दीक्षा ली। उन्होने नाम रखा श्रीगिरिधारीशरण।

ब्रह्मचारी गिरिधारीशरणजीने तब गुरुदेवसे पूछा—"मुझे कहाँ रहकर किस प्रकार भजन करना चाहिए ?"

गुरुदेवने आज्ञा की—"तुम्हें जहाँ शालग्राम मिले थे, वहीं जाकर गोपाल-मन्त्रका जप करो।"

गिरिधारीशरणजी झोझाकी झीलपर जाकर गोपाल-मन्त्रका जप करने लगे। १२ वर्ष तक लगातार निष्ठा-पूर्वक जप करनेके पश्चात् उन्हें मन्त्र-सिद्धि हुई।

मन्त्र-सिद्धिके फल स्वरूप ब्रह्मचारीजीको वाक्-सिद्धि हो गयी। उन्होंने जिसे जो आशीर्वाद दिया वह फलीभूत हुआ। बहुतसे राजा-महाराजा उनके शिष्य हुए और बहुत-से देवालयोंका उनके द्वारा निर्माण हुआ।

मंत्र-सिद्धिके पश्चात् ब्रह्मचारीजी वृन्दावन चले गये और वंशीवटपर एकान्त भजन करने लगे। उस समय

उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी और राजा-महाराजा और सेठ-साहूकार उनके दर्शन करने आने लगे थे।

एक बार ईशरदा (जयपुर) के राजा रघुवीरसिंहजी उनके दर्शन करने आये। उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया, जिसके परिणाम स्वरूप उनकी रानी जोधीजीके दो पुत्र हुए—सरदारसिंह और कायमसिंह।

कायमसिंह जब १७-१८ वर्षके हुए जोधीरानी उन्हें लेकर वृन्दावन आयीं और ब्रह्मचारीजीसे उन्हें वैष्णवी दीक्षा दिलवाई। कायमसिंहजीकी उन दिनों ईशरदासे खट-पट चल रही थी। इसलिए रानी चिंतित थीं। ब्रह्मचारीजीने कहा—"चिंता न करो। ईशरदा क्या, इसे जयपुरकी राजगद्दी मिलेगो।" हुआ भी यही। वि० सं० १९३७ आश्विन कृ० नवमीको कायमसिंह जयपुर के राजा हो गये। ब्रह्मचारीजीने उनका नाम रखा था माधवसिंह। उसी नामसे वे प्रसिद्ध हुए।

सं० १९१४ के गदरमें ग्वालियरके राजा राव जियाजी रावका राज्य उनसे हस्तान्तरित हो गया था। उन्होंने भी ब्रह्मचारीजीकी शरण ली। उनके आशीर्वादसे उन्हें अपना राज्य फिर मिल गया। उन्होंने ब्रह्मचारीजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेंके लिए छोटी-कुञ्जका निर्माण किया और उसमें उनके भजन करनेके लिए एक गुफा बनवाई। उनके भी कोई सन्तान नहीं थी। ब्रह्मचारीजी

के आशीर्वादसे राजकुमार माधवरावका जन्म हुआ। तब उन्होंने १२०० रु० वार्षिक आमदनीकी जागीरका पट्टा उनके नाम लिख दिया।

ब्रह्मचारीजी एक बार छटीकराकी ओर जंगलमें जा बैठे। वहाँ भी उनके प्रतापसे गोपालगढ़ नामसे एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण हो गया और श्रीगिरिधर गोपालकी सेवा-पूजा होने लगी। उनकी प्रेरणासे माधव-सिंहजीने बरसानेमें गिरिशखरपर और वृन्दावनमें मथुरा रोडपर दो विशाल मन्दिरोंका निर्माण किया। राजपुरमें दाऊजीके मन्दिर सहित कई और मन्दिरोंका निर्माण भी उन्हींकी प्रेरणासे हुआ।

जयपुर और ग्वालियरके अतिरिक्त ओल, कासगंज, कांकेर, हाथरस आदि कई स्थानोंके राजा और नैपालके राणा जंगबहादुर भी उनके शिष्य हुए। पंचमजार्जके शुभागमनपर देहली-दरबारमें उन्हें आमन्त्रित किया गया।

ब्रह्मचारीजी पढ़े-लिखे एक अक्षर भी नहीं थे। उन्हें जो सफलता मिली और जो उनकी प्रसिद्धि हुई वह केवल गोपाल-मन्त्रकी सिद्धी प्राप्त कर लेनेके कारण ही।

वे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीके द्वादश शिष्योंमें अन्यतम श्रीलाफरगोपालदेवाचार्यजीकी परम्परामें उनकी १३वीं पीठिकामें हुए। वि० सं० १९४६ फाल्गुन शु० १५ को उन्होंने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की।

श्रीजगन्नाथदास बाबाजी

(बरसाना)

बरसानेके भानुकुण्ड–तीरपर यह जगन्नाथदास बाबा-की कुटिया है। जगन्नाथदास बाबा बर्धमानके हैं। युवा-वस्थामें राधारानीकी कृपाकी अभिलाषा हृदयमें लेकर यहाँ चले आये थे। बहुत दिनोंसे वैराग्य अवलम्बन कर यहाँ रह रहे हैं। बड़े निश्किचन महात्मा हैं। मधुकरी माँगकर जीवन निर्वाह करते हैं।

पर उनकी कुटियामें इन छोटी-छोटी पोटलियों और मटके-मटकियोंमें क्या है? इनमें गुड़ है, चावल हैं, पुरानी इमली है और हर्र, बहेड़ा, आमला, चूरन-चटनी आदि औषधियाँ हैं। यह सब साधु-वैष्णवों और ब्रज-वासियोंके लिये हैं। बाबा स्वयं तो मधुकरीमें प्राप्त रोटी-के टुकड़ोंके सिवा और कुछ लेते नहीं। साधु-वैष्णवोंके लिये ही तरह-तरहकी औषधियाँ और अन्नादि जुटाकर रखते हैं। आवश्यकता पड़नेपर अपने हाथसे रसोई बनाकर भी उन्हें खिलाते हैं।

पर इस समय बरसाने और आस-पासके गाँवोंमें भयानक दुर्भिक्षके कारण त्राहि-त्राहि मच रही है। बाबाको ब्रजवासियोंके घर मधुकरीके लिये जानेमें बड़ा संकोच हो रहा है। क्या करें कुछ समझमें नहीं आ रहा है। कुटियामें जो थोड़ी-बहुत सामग्री है, वह तो

साधु-वैष्णवोंके लिये है। उसे अपने प्रयोगमें लायें कैसे ? बरसाना छोड़कर जाना भी वे नहीं चाहते। कहीं अन्यत्र जानेकी सोचते हैं तो हृदयमें धक्-धकी चलने लगती हैं, साँस लम्बी खिंचने लगती है, नेत्रोंसे गंगा-जमुना बहने लगती हैं।

कई दिनोंसे बाबा मधुकरीको नहीं जा रहे हैं। आखिर कबतक निराहार रहते। विवश हो उन्होंने बरसानेसे चले जानेका निश्चय किया। पर जो एकमात्र राधारानीके चरणोंका सहारा लेकर उनके स्थानमें हमेशा के लिये डेरा डाल चुका है, उसे वे कब अपनेसे दूर करना चाहती हैं ? उसके जानेका विचार मनमें आते ही उनके हृदयमें क्या कम धक-धकी होने लगती है ?

बाबा जैसे ही डोरा-डण्डा लेकर बरसानेसे जानेको हुए, एक किशोरी व्रजबालाने आकर पूछा—"बाबा, कहाँ जाय रह्यौ है ?"

"जाऊँ हूँ कहीं" बाबाने नेत्रोंमें आँसू भरकर कहा—

"च्यौं ?" बालिकाने फिर पूछा।

"अरे पेटको तो कछू देनो पड़ैगो। तेरे हियाँ मधुकरी को टोटो जो पड़ रह्यौ है।"

"तेरे ताईं टोटो ? बाबा कहा कहै है ? मेरे घर च्यौं नईं जाय ? आलेमें मधूकरी राखी है तेरे लियें। लै आ जायकें। कहूँ मत जा।"

बाबा भूखे तो थे ही। सोचा जब बालिकाके घर-वालोंने मेरे लिये मधूकरी रख छोड़ी है, तो खा-पीकर

ही जाना उचित होगा। वे लौट गये अपनी कुटियाको। सामान वहाँ रख, माला-झोली हाथमें ले, नाम करते हुए उस व्रजवासीके घर पहुँचे।

व्रजवासीने बाबाको देखते ही कहा—"बाबा, जा समय तो मधुकरी हय ना। आगे च्यौं नहीं आयो ?"

"तेरी लालीने तो कही मधूकरी आलेमें राखी है, जाई मारे तो आयो ?"

लालीकी बात सुन व्रजवासी चोंका, क्योंकि लाली न जाने कबकी ससुराल गयी हुई थी। पर उसने बाबासे कुछ नहीं कहा। घरमें जाकर स्त्रीसे पूछा—"बाबाके ताईं मधुकरी आलेमें राखी है का ?" वैसे ही उसने और उसकी स्त्रीने जो आलेकी ओर आँख घुमाई, तो वहाँ रोटियाँ रखी देख अवाक् ! स्त्रीने कहा—"कहाँ तें आयी रोटी ? मेंने तो राखी नाँय !"

व्रजवासीने फिर भी मधुकरीके रहस्यके बारेमें बाबा-से कुछ न कहा। रोटियाँ उन्हें देते हुए बोला—"बाबा, रोटी रोज आयकें लै जायौ कर।"

डूबते को तिनकेका सहारा बहुत होता है। बाबाने बरसानेसे जानेका विचार छोड़ दिया। रोज उसी व्रज-वासीके यहाँसे मधूकरी लाने लगे।

उस व्रजवासी परिवारपर आज भी राधारानीकी प्रचुर कृपा है। "गौड़ीय-वैष्णव-जीवन"के लेखकने लिखा है कि "वनखड़ी" नामके उस परिवारके वर्तमान वंशधर ही बरसानेमें सबसे अधिक सम्पन्न और सुखी हैं।

जगन्नाथदास बाबाके वेषके शिष्य श्रीप्राणकृष्णदासजी भी बाबाके शरीर छोड़नेके उपरान्त उस परिवारमें मधूकरीके लिये अवश्य जाया करते।

एकबार जगन्नाथदास बाबाके कनिष्ट भ्राता उनके दर्शन करने वर्धमानसे बरसाना आये। उन्हें ब्रजवासीके घरकी मोटी रोटी खाते देख उन्होंने कहा—"दादा, यह कंडोंके समान क्या खा रहे हो? तुम्हें क्या वर्धमानके सीता-भोगकी याद नहीं आती?"

बाबाने उत्तर दिया—"भाई, मैं एक घण्टेका फकीर हूँ, तेइस घंटोंका बादशाह।"

श्रीमौनी बाबाजी

(दोमिल वन)

मौनी बाबा माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके उड़िया संत थे। उनके असली नामका पता नहीं। पर जिस घटनाके बाद वे मौनी बाबा कहलाने लगे, वह इस प्रकार है।

नन्दग्राममें सनातन गोस्वामीकी समाधिके पास नन्द-सरोवरपर दंडी सन्यासी श्रीअमृतानन्द सरस्वती रहते

थे। वे प्रकांड विद्वान थे। पं० श्यामसुन्दरजी और श्रीकालूराम शास्त्री जैसे विद्वानोंने उनसे शिक्षा पाई थी। उन्हींके पास मौनी बाबा भी पढ़ने जाया करते थे। वे बाचाल बहुत थे। पढ़ते समय भी बहुत बोलते थे। एकदिन जब वे पढ़ते-पढ़ते व्यर्थ बोल पड़े, गुरुदेवने फटकार कर कहा—"चुप रह"। उसी समयसे वे मौन हो गये और मौनी बाबा कहलाने लगे।

वे बड़े भजन-निष्ठ थे। दोमिलबनमें एक ऊँची अटरिया बनाकर उसमें भजन करते थे। उनकी विल-क्षणता यह थी कि वे सख्या खाते और दूध पीते थे। दूधके अतिरिक्त और कुछ नहीं लेते थे। उन्होंने बहुत-सी सुन्दर गायें पाल रखी थीं। उनकी वे सेवा करते थे। उनका दूध स्वयं पीते थे, और साधु-महात्माओंको पिलाते थे। छोटी अवस्थामें प्रियाशरण बाबा भी उनके पास जाया करते थे। उनसे उपदेश तो मिलता ही था, दूध और खीर भी मिला करती थी।

उनके प्रति ब्रजवासी बड़ी श्रद्धा रखते थे। इसलिए उनकी गायोंको उन्होंने पूरी छूट दे रखी थी। वे जिस खेतमें चाहतीं चरने लग जातीं। उनके लिये किसी खेत-में किसी प्रकारकी रोक-टोक न थी।

मौनी बाबाने नृसिंहदेवकी उपासना कर नृसिंहदेवके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त की थी। वे नित्य प्रातः नन्दगाँवमें नन्दलालके दर्शन करते और संध्या समय बरसाने जाकर किशोरीजीके दर्शन करते।

एकदिन जब वे बरसाने जा रहे थे कालूरामजी शास्त्री अपनी पाठशालामें विद्यार्थियोंको पढ़ा रहे थे। कालूरामजी बड़े पंडित तो थे ही, बड़े भजन-निष्ठ भी थे। पर लगता है कि उन्हें अपने पांडित्य और भजनका कुछ अभिमान था। वे किसी साधुके आगे जल्दी माथा नहीं झुकाते थे। किसी साधुपर कटाक्ष करनेमें भी संकोच नहीं करते थे। मौनी बाबाको सामनेसे जाते देख उन्होंने विद्यार्थियोंसे कहा—"देखो, रंगा सियार जा रहा है।"

रात्रिमें कालूरामजी और उनके विद्यार्थियोंको, जो उनके साथ रहते थे, घरके भीतर सिंहके दहाड़नेकी आवाज सुनाई दी। आवाज सुनते ही वे थर-थर काँपने लगे। चारों ओर देखनेपर दीखा कुछ नहीं। पर दहाड़नेकी आवाज निकट आती जान पड़ी। कालूरामजी समझ गये कि यह नृसिंहदेवकी आवाज है, जिनके भक्तका उन्होंने अपमान किया है। वे तुरन्त हाथ जोड़कर खड़े हो गये, और काँपती हुई आवाजमें कहने लगे–"क्षमा करो, प्रभु क्षमा करो। मैंने आपके भक्तका अपमान कर आपके चरणोंमें अपराध किया है। प्रभु क्षमा—क्षमा।"

धीरे-धीरे दहाड़ बन्द हो गयी। पर कालूरामजीके हृदयकी धड़कन बन्द न हुई। उन्हें रातभर नींद नहीं आयी। सबेरा होते ही वे मौनीबाबाकी अटरियापर गये। उन्हें साष्टांग दण्डवत् कर उनसे क्षमा माँगी। मौनी बाबाने लिखकर उनसे कहा—"मैंने तो तुम्हारी बातका बुरा नहीं माना। पर मेरे ऊपर जो हैं, उन्हें यह बात

अच्छी नहीं लगी। तुम्हें चाहिये कि किसी संतकी अवज्ञा न किया करो। प्रभु अपना अपमान सह लेते हैं। पर अपने भक्तका अपमान उनसे सहन नहीं होता।"

बाबा सभी सम्प्रदायों और जातियोंमें सम-दृष्टि रखते थे। सभी सम्प्रदायों और जातियोंके लोग भी उनके प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। कितनी श्रद्धा रखते थे यह एक घटना से स्पष्ट है।

एक बार बाबाको विष्णु-यज्ञकी इच्छा हुई। उन्होंने केवल व्रजवासियोंके पैसेसे यज्ञकी योजना बनाई। चारों ओरसे ब्रजवासी यज्ञकी सामग्री लाने लगे। बारह गाँवों के मेयो जातिके मुसलमानोंने भी यज्ञमें सहयोग किया। घी, दूध, लकड़ी आदिसे यज्ञ-स्थलीको पाट दिया। द्रव्यसे भी प्रचुर परिमाणमें सहायता की। इतना ही नहीं, यज्ञमें जो कीर्तन हुआ उसमें भी उन्होंने वैसे ही जोशके साथ भाग लिया, जैसे और किसीने।

श्रीरूपमाधुरीशरणजीके निम्न कवित्तसे ज्ञात होता है कि उन्होंने बारह वर्ष तक गुप्त रहकर, केवल बनके पत्ते खाकर गोपाल-मन्त्रका जप किया और उसमें सिद्धि प्राप्त की—

दोऊँमिलके निवासी, बाबा मौनी सुखरासी,
जाने सब व्रजवासी, मन्त्रराज जप कीनो है।
गुप्त बारह वर्ष रहिया, कछु काहूसे न कहिया,
पत्ते वृक्षके जु खइया, संत हरी रंग भीनो है॥

भये ब्रजमें प्रसिद्ध, उन्हें जानो पूरो सिद्ध,
जाके ठाड़ी ऋद्धि सिद्धि, सुख जीवनको दीनो है।
जाके नैनोंमें है रंग, उठे प्रेमकी उमंग,
सुख बरसै किये संग, भारी जग यश लीनो है॥
(श्रीरूपमाधुरीशरणजीकी बाणी ३-२८)

लगभग ६० वर्ष हुए जब बाबाको धाम प्राप्ति हुई।

श्रीगौरांगदास बाबाजी

(मदनमोहन ठौर, वृन्दावन)

उस दिन श्रीगौरांगदास बाबाजीको नींद बिलकुल नहीं आयी। सारी रात चारपाईपर छटपट करते बीती! सबेरा होनेपर उन्होंने पासके वैष्णवोंसे कहा—';भाई, देखो तो, मेरी खाटमें लगता है खटमल हो गये हैं। रात भर सोने नहीं दिया।"

एक वैष्णवने बिछौना उलटा तो देखा कि खटमल तो नहीं, उसके नीचे कुछ रुपये रखे हैं। उसने रुपये निकालकर बाबाको दिखाये। रुपये देख बाबा ऐसे चौंके जैसे साँप-बिच्छूको देखकर कोई चौंके और बोले—

"देखो, तभी तो मैं कहता था, मेरे बिछौनेके नीचे कुछ है, जिसने मुझे सोने नहीं दिया। रुपये, और वह भी उस विषयी राजाके जो कल आया था ! ये क्या मुझे सोने देते ? साँप-बिच्छूका जहर तो उनके काटनेसे चढ़ता है। इनका जहर विना काटे ही चढ़ जाता है। तुरन्त ले जाओ इन्हें। मदनमोहनको कुछ भोग लगाकर वैष्णवों-को बाँट दो।"

बाबा बड़े विरक्त थे। रुपया-पैसा स्पर्श नहीं करते थे। एक राजा साहब, जो उनके दर्शन करने आये थे यह जानते थे। इसलिए वे उनसे छिपाकर बिछौनेके नीचे कुछ रुपये रख गये थे, जिससे वे उन्हें स्पर्श किये विना किसीके माध्यमसे अपने उपयोगमें ले आयें।

बाबा मदनमोहन ठौरमें सनातन गोस्वामीकी समाधि के निकट रहते थे। वे इतने वृद्ध हो गये थे कि समाधिके निकट सीढ़ियाँ चढ़ने या उतरनेमें उन्हें आधा घण्टा लग जाता था। फिर भी वे नित्य मधुकरीको जाते थे और श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी समाधिपर उन्हें भोग लगा-कर स्वयं प्रसादी ग्रहण करते थे।

शरीर त्यागनेके कुछ देर पूर्व उन्होंने मदनमोहनके कामदारको बुलाकर कहा—"मेरी कुटियामें जो भी हो अभी ले जाओ।"

कामदारने कहा—"बाबा, आपकी कुटियामें ऐसा कुछ नहीं है, जो किसीके काम आये।"

यह सुन बाबा निश्चिन्त हुए। थोड़ी देरमें वहाँके सनातनदास बाबासे बोले—"सनातन! देखते नहीं महाप्रभु आये हैं! आसन दो, आसन!" उसी क्षण कुटियाको सबने देखा एक दिव्य प्रकाशसे आलोकित होते और प्रकाशके विलीन होनेके साथ बाबाकी जीवन-यात्राको समाप्त होते।

श्रीकृष्णप्रसाददास बाबाजी

(पूछरी/काम्यवन)

श्रीकृष्णप्रसाददास बाबाजीने वृन्दावनकी मदनमोहन ठौरके श्रीनित्यानन्ददास बाबाजीसे वेश-दीक्षा लेनेके पश्चात् उनसे कहा—"कृपा कर उपदेश करें अब मुझे क्या करना है ?"

नित्यानन्ददास बाबाने कहा—"तू तो है नितान्त मूर्ख। शास्त्र-पाठ, ग्रन्थालोचना, रस-विचारादि तो तेरे बसका है नहीं। यदि कुछ महत्-सेवा कर सके तो ठीक है। बता कर सकेगा ?"

गुरु-वाक्य सुन कृष्णप्रसादने विनय पूर्वक कहा—

"प्रभु ! कृपाकर आदेश करें कहाँ, किसकी सेवाकर कृतार्थ हो सकूँगा ?"

सिद्ध बाबाने कहा—"तू राधारमण मन्दिरके सेवाइत श्रीगल्लूजी महाराजकी सेवा कर। उनकी सेवा करनेसे तुझे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी।"

गल्लूजी महाराज आचार्य श्रीराधारमण गोस्वामीजी महाराजके पिता थे। वे बड़े भजनशील और उदारचेता थे। कृष्णप्रसाद उनके चरणोंमें जा गिरे। उसी दिनसे केवल उनकी नहीं, उनके परिवारके बालक-बालिका, दास-दासी और पशु-पक्षी आदि तककी सेवामें जुट गये। उन्हें उनकी सेवासे इतना भी अवकाश न मिलता कि वे आध घण्टा बैठकर आह्निक-भजनादि कर सकते। वे खड़े-खड़े केवल दस बार नाम-स्मरण कर लिया करते। उनकी गोदमें सब समय कोई बालक-बालिका होती, जिसका मल-मूत्रतक स्वयं परिष्कार करते।

बीस वर्ष तक इस प्रकार बड़ी निष्ठा और भक्तिसे उन्होंने गुरु-आज्ञाका पालन किया। गल्लूजी महाराजके लीलामें प्रवेश करनेपर वे भी मुक्त पक्षीकी भाँति घरसे बाहर हो लिये। गोस्वामीगणके विशेष अनुरोधसे दो-तीन वर्ष राधारमणजीके मन्दिरके सामने रास-चबूतरेके सन्निकट गोपालजीके मन्दिरमें रहे और मधुकरी द्वारा जीवन निर्वाह करते रहे। इसके पश्चात् वे गोवर्धनमें गोविन्दकुण्डके निकट पूछरीमें रहकर भजन करने लगे।

अन्तमें उन्होंने काम्यवनमें आसन जमाया और जीवनके शेष क्षण तक वहीं भजन किया।

इसमें संदेह नहीं कि गुरु-आज्ञा के पालन और महत् पुरुषकी सेवाके फल-स्वरूप उन्हें अभीष्ट-प्राप्ति हुई। अभीष्ट-सिद्धिका सबसे बड़ा लक्षण है दैन्य। कृष्णप्रसाद बाबाका दैन्य अतुलनीय था। वे मार्गमें चलते समय अपने बायें कंधेपर ८-१० किलोकी गूदड़ो रखते थे, जिसका एक सिरा उनके पीछे झाड़ू देता चलता था। उद्देश्य था कि उनके चरण-चिह्न पृथ्वीपर न रहें और कोई उनकी चरण-धूलि न ले सके। उनकी चरण-धूलि लेनेको लोग लालायित रहते थे, क्योंकि वे उन्हें एक महत्के रूपमें जानने लगे थे। चरण-धूलि तो दूर, उन्हें पहले दंडवत् करना भी किसीके लिए संभव न था। वैष्णव मात्र को देखते ही वे स्वयं उसे साष्टांगदण्डवत् करते हुए पृथ्वी-पर पड़ जाते थे और तब तक पड़े रहते थे, जबतक वह आँखसे ओझल नहीं हो जाता था, या उन्हें अपने हाथसे उठा नहीं देता था।

श्रीकामिनीकुमार घोष

(वृन्दावन)

श्रीकामिनीकुमार घोषकी आयु १०० वर्षसे भी अधिक थी जब लेखकने वृन्दावनमें श्रीगोपेश्वर महादेवके निकट उनके निवासस्थानपर उनके दर्शन किये। वे मकानकी दूसरी मंजिलपर बराम्देमें दीवारके सहारे पद्मासनसे बैठे थे। उनके नेत्र अर्धमुद्रित थे, और भीगे-भीगेसे। हाथमें माला-झोली थी। ओष्ठ ईषत हिल रहे थे। पर वे वाह्यज्ञान-शून्यसे लग रहे थे। उनकी पुत्री श्रीमती व्रज-रंगिनी रायके कई बार उच्च स्वरसे ······ 'राधेश्याम, राधेश्याम' पुकारनेपर उन्होंने नेत्र खोले। दण्डवत् प्रणामादिके पश्चात् उनसे कुछ बातें हुईं। पर वे कुछ पूछनेपर केवल एक-दो शब्दोंमें उत्तर देते और चुप हो जाते। ऐसा लगता कि अन्तर्जगत्की कोई अनुभूति उन्हें बार-बार अपनी ओर खींच रही है। उन्हें प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए प्रयत्न करना पड़ रहा है। कभी-कभी वे कुछ कहना चाहते, पर कहते-कहते रुक जाते। वाक्य अधूराका अधूरा रह जाता। उनका मौन ही उसे पूरा करता जान पड़ता। पर उनके भावसे लगता कि जैसे उन्हें वाक्यको अधूरा छोड़ देनेका भी पता नहीं है !

पूछनेपर ज्ञात हुआ कि उस समय यह उनकी साधारण और सहज स्थिति थी। वे श्रीकृष्ण-लीला-चिंतनमें सदा

डूबे रहते थे। साधारण साधकको जिस प्रकार मन और इन्द्रियोंको संसारके विषयोंसे खींचकर श्रीकृष्ण-रूप-गुण-लीलादिमें लगानेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है, उसी प्रकार उन्हें मन और इन्द्रियोंको श्रीकृष्ण-रूप-गुण-लीलादिसे खींचकर बहिर्जगत्में लानेके लिए प्रयत्न करना पड़ता था।

उनकी सिद्धावस्थाकी इस चरम स्थितिके मूलमें था उनका सदाचार और कतिपय सिद्ध-महात्माओंका संग, जो उन्हें भगवत्कृपासे उनके जीवनके प्रारम्भसे अन्ततक मिलता रहा।

उनके पिता श्रीगोविन्दमोहन घोष स्वयं परम भक्त थे। वे नओला ग्राम, जिला मैमनसिंहके रहने वाले थे। पर उनके भक्ति-भावके कारण दूर-दूरके लोग उन्हें जानते थे और उनके प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे। श्रीराधा-गिरिधारीकी उनके घरमें सेवा थी। साधु-वैष्णवोंका समागम और कथा-वार्ताओंका दौर-दौरा भी उनके यहाँ चलता ही रहता था।

श्रीकामिनीकुमारपर इस सबका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। उनके हृदयकी उर्वर भूमिपर भक्तिका बीजारोपण हुआ उनके घरमें ही। प्राथमिक शिक्षा घरपर प्राप्तकर जब वे कलकत्ते गये बी. ए. और कानूनकी परीक्षाएँ पास करने, तब उन्हें साधु-महात्माओंका संग करनेका विशेष अवसर मिला। वे उतना ही समय पढ़नेमें लगाते जितना इन परीक्षाओंको पास करनेके लिए आवश्यक होता।

बाकी समय साधु-संतोंके सत्संगमें व्यतीत करते। अपने भक्ति-भावकी रक्षाके उद्देश्यसे सहपाठियों और अन्य लोगोंसे सम्बन्ध कम-से-कम रखते। अपना भोजन भी आप ही बनाते, जिससे दूसरे लोगोंके सम्पर्कमें न आना पड़े।

बी. ए. और लॉकी परीक्षाएँ पास करनेके पश्चात् उनके माता-पिताने उनका विवाह कर देना चाहा। वे विवाह नहीं करना चाहते थे। माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करना भी उनके स्वभावके अनुकूल न था। वे बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये।

उनके बड़े भाईके श्वसुर श्रीहरिसुन्दर भुञा (भौमिक) एक सिद्ध महात्मा थे। वे सदा भावाविष्ट रहते। राधारानीके चरणोंकी विस्मृति कभी न होने देते। उनका कामिनीबाबू गुरुके समान आदर करते। भजन-साधनके सम्बन्धमें कोई कठिनाई होती तो उन्हींसे परामर्श करते। जो वे कहते उसे स्वीकार करनेको बाध्य होते। विवाहके सम्बन्धमें भी उन्होंने उनसे परामर्श किया। उन्होंने उन्हें विवाह कर लेनेकी सलाह दी और कहा—"देखो, विवाह करने या न करनेसे भक्तिका कोई सम्बन्ध नहीं। साधक विवाहित हो या अविवाहित, वह सदा राधारानीकी दासी होनेका अभिमान रखे। यह समझे कि उसका संसार राधारानीका ही संसार है। जो भी कार्य करे उसे राधारानीका कार्य समझकर करे। ऐसा कोई भी कार्य न करे जिसमें उनका भावानुसरण या

अनुमोदन न हो। राधारानीकी कृपा लाभ करनेका यह सबसे सहज उपाय है।"

भुञ्‍ञाजीने कामिनीबाबूका भक्ति-भाव देख उन्हें एक ऐसी नौकरी दिला देना चाहा, जो उनके साधन-भजनके सर्वथा अनुकूल हो और जिससे उनके भक्ति-भावकी पुष्टि होती रहे। वे उन्हें तराशके जमींदार राजर्षि बनमालीराय बहादुरके पास ले गये। बनमाली राय भुञ्‍ञा महाशयको अपना शिक्षा गुरु मानते थे। उनकी सिफारिशपर उन्होंने कामिनीबाबूकी अपने बच्चोंके शिक्षक (प्राइवेट ट्यूटर) के रूपमें नियुक्ति कर दी। इसके पश्चात् शीघ्र ही उनकी प्रतिभा और भक्ति-परायणतासे प्रभावित हो उन्होंने उनकी पदोन्नति पहले अपने प्राइवेट सेक्रेटरी और फिर अपनी रियासतके मैनेजरके रूपमें कर दी।

इसी बीच कामिनी बाबूका विवाह हुआ और वे एक आदर्श गृहस्थ भक्तके रूपमें राधारानीके संसारके संसारी होकर जीवन यापन करने लगे। तराशकी राजधानी वनवारी नगरमें जिस परिवेशमें वे रहते थे उसका प्रत्येक अंश उनके इस भावकी पुष्टि करता जान पड़ता था। राजर्षि वनमाली राय परम भक्त थे। वे अपने कुलदेवता 'विनोद-विनोदिनी' (श्रीकृष्ण और श्रीराधा) की स्नान शृङ्गार, भोग और आरती आदिकी सेवा अपने-आप करते। उन्हें भाँति-भाँतिसे लाड़ लड़ाते। उन्हें लेकर उनके यहाँ कोई न कोई उत्सव नित्य होता रहता। कथा, कीर्तन और साधु-संग भी विनोद-विनोदिनीकी सेवाके

अंगके रूपमें होते रहते। कामिनीबाबूका मुख्य कार्य था इन सब कार्योंमें उनकी सहायता करना। वे नौकर वनमालीरायके नहीं, विनोद-विनोदिनीके थे।

कुछ दिनों बाद राजर्षि बनमालीराय विनोद-विनोदिनीको लेकर ब्रजमें रहने लगे। उन्होंने वृन्दाबन और राधाकुण्डमें दो विशाल भवनोंका निर्माण किया, जो 'तराश मन्दिर' और 'राजबाणी' के नामसे विख्यात हैं। वे कभी विनोद-विनोदिनीके साथ वृन्दावनमें रहते, कभी राधाकुण्डमें। बनमालीरायके साथ कामिनी वाबूका भी व्रजवास होने लगा।

भक्तिके प्रचार और साधु-वैष्णवोंकी सेवाके उद्देश्यसे श्रीबनमालीरायने वृन्दावनमें कई महत्वपूर्ण कार्य किये, जो कामिनी बाबूके अथक परिश्रम और उन कार्योंमें उनकी अपनी विशेष रुचिके कारण ही सम्पन्न हो सके। एक छापाखाना खोलकर चार लाख रुपयेकी लागतसे अष्ट-टीका सहित श्रीमद्‌भागवत् और अन्य भक्ति ग्रन्थोंका मुद्रण कराया, जिनका नितान्त अभाव हो चला था। औषधालय चलाकर भजनानन्दी साधु-वैष्शवों और ब्रजवासियोंकी चिकित्साकी व्यवस्था की। भक्ति-विद्यालयकी स्थापना कर और छात्रोंके लिये छात्र-वृत्तिकी व्यवस्थाकर उन्हें शास्त्र पढ़ानेकी व्यवस्था की!

भक्तश्रेष्ठ श्रीबनमालीरायके सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी होने के कारण कामिनी बाबूको वृन्दावनमें विविध प्रकारसे साधु-वैष्णवोंकी सेवा करनेका अवसर तो मिला ही,

उनके भजन-साधनमें विशेष प्रगति हुई। उन्होंने शृंगार-वटके श्रीपाद ब्रह्मानन्द गोस्वामी प्रभुसे मन्त्र-दीक्षा लेकर विधिवत् भक्ति-साधना आरम्भ कर दी। सत्संगकी उन्हें असीम सुविधाएँ मिलीं। उनका जीवन सत्संगमय हो गया। उस समय वृन्दावनमें जितने सिद्ध-महात्मा रहते थे, सबसे उनका अति निकटका सम्बन्ध हुआ। उनका मुख्य काम ही था उनसे सम्पर्क स्थापितकर राजर्षिजी को उनका संग उपलब्ध कराना। इस प्रकार जिन महात्माओंकी विशेष कृपा उन्हें प्राप्त हुई उनमेंसे कुछ हैं—अद्वैतवंशके प्रभुपाद श्रीराधिकानाथ गोस्वामी, श्रीगौर-किशोर शिरोमणि, श्रीकृष्णदास बाबा, श्रीनित्यानन्ददास बाबा, पं० रामकृष्णदास बाबा, और श्रीजगदीशदास बाबा।

बंगालसे भी श्रीराधारमण चरणदास (बड़े बाबा), श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी और प्रभुपाद प्राणगोपाल गोस्वामी आदि वृन्दावन आया करते। उनका सबका संग उन्हें राजर्षिजीके कारण सहज ही उपलब्ध होता। जिस प्रेम-वस्तुको जीवन भरकी साधनासे भी प्राप्त करना सम्भव नहीं होता, उसके लिये इनका मार्ग इन महा-पुरुषोंके दिव्य संगके प्रभावसे धीरे-धीरे प्रशस्त होता गया।

जिस प्रकार इन महापुरुषोंके संगसे कामिनीबाबूकी आत्म-शुद्धि होती गयी और उनके अभीष्ट-प्राप्तिकी भूमिका बनती गयी, उसका एक उदाहरण है 'चरित-

सुधा' नामके श्रीराधारमण चरणदास बाबाजी महाराजके जीवन-चरित्रमें दिया गया उनके सत्संगका एक विवरण, जो स्वयं कामिनीबाबूके अपने लिखित विवरणके अनुसार उसमें छापा गया है।[1] वह इस प्रकार है—

"एकदिन राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशयको किसी महानुभावसे भेंट कराने ले गये। कामिनीबाबू भी उनके साथ थे। उक्त महानुभावका बाबाजी महाशयको दर्शन देना तो दूर, वे उनके प्रति बड़ी विरक्ति दिखाने लगे और उन्हें उनका वहाँ रुकना भी असह्य प्रतीत होने लगा। राजर्षिने अपने जीवनमें स्वप्नमें भी कभी ऐसा व्यवहार किसीसे प्राप्त नहीं किया था। वे तो विशेष आनन्द प्राप्त करनेकी आशासे ही वहाँ गये थे, पर हुआ उसके बिलकुल विपरीत। राजर्षि बहादुर बाहरसे कुछ न कह सके। पर उक्त महानुभावकी एक-एक बातको लेकर वे मन ही मन इतना व्यथित थे कि उनकी तत्कालीन अवस्था देखकर लगता मानो वे पृथ्वीसे प्रार्थना कर रहे हों—"माँ वसुन्धरे! तुम फट जाओ, जिससे मैं तुम्हारी गोदमें समाकर इस असह्य वेदनासे मुक्ति पा सकूँ।"

बाबाजी महाशयने उक्त महानुभावके उस व्यवहार-का परोक्षभावसे अनुभव कर, उन्हींकी शान्तिके लिये,

---

१. देखिए, चरित-सुधा, खण्ड ५, पृष्ठ १५८।

उन्हें प्रणाम कर अन्यत्र प्रस्थान किया। क्षणभर पीछे राजर्षि बहादुर भी उन महानुभावको प्रणाम कर व्यथित हृदयसे बाबाजी महाशयके पास लौट आये। बाबाजी महाशय उक्त घटनाके विषयमें कुछ न कहकर अपनी स्वाभाविक प्रीति और सरल व्यवहारके साथ लीला-कथा कहते-कहते अपने स्थानपर लौट आये। स्वयं राजर्षि बहादुरके साथ कोई ऐसा व्यवहार करता, तो उन्हें जरा भी दुख न होता। पर वे एक ऐसे महापुरुषको साथ ले गये थे, जो जगत्‌के आदर्श थे; जिन्हें आबाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष परम सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। ऐसे महापुरुषका इतना अपमान! राजर्षिकी यह मनोदशा किसी तरह दूर नहीं हो रही थी। अन्तमें एक दिन बाबाजी महाशयने कुसुम-सरोवरपर राजर्षिका हाथ पकड़कर गद्‌गद् कण्ठसे कहा—"भाई वनमाली, यदि तुमने एकदिनके लिए भी कभी मुझे चाहा है, तो आज एक भीख दो। उस दिन उन महानुभावके व्यवहारसे तुम्हें जो दुख हुआ, वही मुझे भिक्षामें देकर वचन दो कि इस विषयको लेकर फिर कभी तुम उनपर रोष न करोगे।" बाबाजी महाशयकी उस समयकी प्रेम-मूर्तिको देख राजर्षि बहादुर विस्मित हो गये। साश्रुनयन और गद्‌गद् कण्ठसे बोले—"दादा, आप जो आदेश देंगे, उसका पालन अवश्य होगा। आप कृपा-शक्तिका संचार कीजिये, जिससे मेरी मानसिक मलीनता दूर हो और स्वच्छ भाव पैदा हों।" उस दिनसे राजर्षिके उन महा-

नुभावके प्रति व्यवहारसे ऐसा भी कभी प्रतीत नहीं हुआ कि उक्त घटना कभी घटी थी और वह उन्हें याद है।

महात्मा राजर्षि बहादुरके मनसे तो यह कालिमा धुल गयी। पर कामिनीबाबूको रह-रहकर बेचैन करती रही। यह बात अन्तर्यामी बाबाजी महाशयने जान ली। एक दिन किसी कार्यसे उन्हें दो-एक दिनको कहीं जाना था। पर जब वे बाबा महाशयसे बिदा लेने गये, तो वे बड़े प्यारसे बोले—"भाई कामिनी! हम लोग एकदम पराधीन हैं; किसीके प्रति दोष-दृष्टि रखनेके लिये हमारे पास अवकाश कहाँ? जीव नित्य कृष्णदास है। नाना प्रकारके झंझटोंमें पड़कर वह इस बातको भूल जाता है और मायाकी शृङ्खलामें बँधकर अभिमान करने लगता है कि मैं धनी हूँ, मानी हूँ, कुलीन, विद्वान, अथवा भक्त हूँ। यदि कोई रागानुग साधक हमारा आदर न करें अथवा हमारे साथ तीखा व्यवहार करें, तब भी हमें यह मानना चाहिये कि वे सदा हमारे हितकारी हैं। कुछ उपाधियाँ आ जानेसे हमारे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। परस्पर उपाधि-रहित होनेसे क्या फिर प्रेमसे मिलने में कोई बाधा हो सकती है?"

बाबाजी महाशयकी बात सुन कामिनी बाबूके हृदयमें उक्त महानुभावके व्यवहारको लेकर जो सूक्ष्म रूपसे छिपी हुई कालिमा थी, वह दूर हो गयी।

एक दिन कामिनी बाबू बाबाजी महाशयके साथ महाप्रसाद पाने बैठे। उस दिन ठाकुरजीको मूँगकी दाल

का भोग लगा था। कामिनी बाबूने गोविन्द दादासे कहा—'इस वक्त खटाई डालकर मटरकी दाल बनाई जाती तो अच्छा था।' यह सुन बाबाजी महाशय अपने स्वाभाविक रसपरिपूर्ण सख्य-भावसे मृदुहास्य सहित बोले–'भाई कामिनी, आज तुमने महान अपराध किया।' कामिनी बाबूने चौंककर पूछा—"जी! क्या अपराध किया?" बाबाजी महाशय बोले—"देखो, कृपा कर जो भी आयें, उनका स्वागत-सत्कार करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा न कर उनके आगे दूसरोंकी प्रशंसा करनेका मतलब क्या उनका अनादर करना नहीं है? इसलिए आज तुमने मूँगकी दालके प्रति अपराध किया है।" बात सामान्य थी। और परिहासके साथ कही गयी थी। पर थी बड़ी शिक्षापूर्ण। वास्तवमें जबतक जो मिल जाय उससे सन्तोष न हो, तबतक शान्ति कहाँ?"

स्वयं राजर्षिजीके संगसे कामिनी बाबूको बहुत लाभ हुआ। राजर्षि सचमुच राजर्षि थे। राजा होते हुए भी उन्हें विषय-सम्पत्तिसे आसक्ति, स्त्री-पुत्रादिसे मोह और मान-सम्मानादिसे किसी प्रकारका लगाव छूकर भी नहीं गया था। संसारके जितने भी नाते-रिश्ते थे, वे प्रभुसे ही मानते थे। यह इस बातसे स्पष्ट है कि उन्हें यदि कोई सांसारिक सम्बन्धसे पिताजी, चाचाजी, भाईजी आदि कहकर पुकारता, तो वे उत्तर न देते। उन्हें 'हरे कृष्ण'

कहकर सम्बोधन करना होता था। राजर्षिजीका यह भाव पूर्णरूपसे कामिनी बाबूमें भी संक्रमित हुआ। वे घरमें हों या दफ्तरमें उन्हें हर किसीको 'राधेश्याम' कह-कर पुकारना होता। यह राजर्षिजीका बाह्य अनुकरण मात्र न था। जबसे वे वृन्दावन आये उनका सारा जीवन राधेश्याममय हो गया था। संसारके प्रति वे उदासीन रहने लगे थे, और राधेश्यामके प्रति आसक्त और उत्कठित।

अब प्रौढ़ावस्थामें उनका भजनावेष इतना बढ़ गया था कि उनके लिये मैनेजरीका काम सम्हालना मुश्किल हो गया था। वैसे तो मैनेजरके रूपमें भी उनका अधिकांश समय विनोद-विनोदिनी और साधु-वैष्णवोंकी सेवा और सत्संगमें ही व्यतीत होता था। पर उन्हें अब राधा-कृष्ण की अष्टकालीन लीलाके चिंतनका चसका लग गया था। उसके लिये चाहिए था एकान्त और चाहिए थी मैनेजरी के कार्यसे पूर्ण मुक्ति।

अतः उन्होंने मैनेजरीसे स्तीफा दे दिया। राजर्षिजी ने ३०) महीनेकी पेंशन बाँध दी, जो उनके अपने निर्वाहके लिये तो पर्याप्त थी, पर उनके समस्त परिवारके लिये नहीं। उनके तीन पुत्र थे—श्रीगौरपद घोष, श्रीनिताइपद घोष, और श्रीसीतानाथ घोष, जिनकी शिक्षाकी व्यवस्था होनी थी। पर कामिनीबाबू तो अपना सारा भार प्रभु पर छोड़कर निश्चिन्त हो चुके थे। भक्तोंका योग-क्षेम वहन करने वाले प्रभुको इसकी व्यवस्था करनेमें देर न

लगी। उन्होंने प्राणगोपाल प्रभुको प्रेरणा देकर उनके कुछ शिष्यों द्वारा इसकी समुचित व्यवस्था करवा दी। एकने श्रीगौरपदको कलकत्तेमें डाक्टरी पढ़ानेका भार अपने ऊपर ले लिया, दूसरेने श्रीनिताइपदको बनारस हिन्दू-विश्व विद्यालयमें इन्जीनियरिंग-पढ़ानेका। निताइ-पद इन्जीनियर बनकर पिताकी आर्थिक सहायता करने लगे। गौरपद डॉक्टरी पासकर वृन्दावनमें ही प्रैक्टिस करने लगे। सीतानाथजीने भी फोटोग्राफी सीखकर वृन्दावनमें काम शुरु कर दिया।

कामिनीबाबूको कीर्तनसे बड़ा प्रेम था। उन्हें कीर्तन की पूरी अभिज्ञता भी थी। देशके वड़े-बड़े कीर्तनियाँ उन्हें कीर्तन सुनाकर सुखी करते और स्वयं सुखी होते। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीगौरपदको प्रसिद्ध कीर्तनियाँ पं० श्रीअद्वैतदास बाबाजीसे कीर्तनकी शिक्षा दिलवाई। गौरपदने शीघ्र एक अच्छे कीर्तनियाँके रूपमें ख्याति प्राप्त कर ली।

वे अकसर पं० रामकृष्णदास बाबा और श्रीमाधवदास बाबा आदि महात्माओंके स्थानोंपर विशेष अवसरोंपर पिताजीके सान्निध्यमें कीर्तन करते-करते भाव-विभोर हो रोते-रोते उनके चरणोंमें गिर पड़ते। पिता भाव-विभोर हो रोते-रोते उन्हें हृदयसे लगा लेते। पिता-पुत्रको भाव-मुद्रामें एकत्र जड़ित देख सारा वातावरण भावमय हो उठता।

कामिनीबाबूने अपने उद्योगसे एक संकीर्तन विद्यालय की भी स्थापना की, जिसके प्रधान शिक्षक थे स्वयं डॉ० गौरपद। उसमें बहुतसे छात्रोंको छात्र-वृत्ति देकर संकीर्तन-विद्या सिखाई। खेदकी बात है कि आजकल वृन्दावन में संकीर्तन लुप्त प्राय हो गया है। जितना भी देखनेमें आ रहा है, वह कामिनीबाबूके संकीर्तन विद्यालयकी ही देन है।

कामिनीबाबूका पांडित्य भी साधारण न था। उन्हें सम्पूर्ण भागवत और चैतन्य-चरितामृत कण्ठ थे। बड़े-बड़े पंडित, यहाँ तक कि प्राणगोपाल प्रभु तक अपनी शंकाओंके समाधानके उद्देश्यसे उनके पाप आया करते। इष्ट-गोष्ठीके लिये महात्माओंका जमघट भी उनके स्थान पर बना रहता। उनकी वृद्धावस्थामें जो महात्मा उनके पास आया करते उनमें श्रीगौरांगदास बाबा, श्रीहंसदास बाबा और श्रीदीनशरणदास बाबा भी हुआ करते। इनके साथ इष्ट-गोष्ठीमें उन्हें बहुत सुख मिलता। एकबार, जब वे ८० वर्षके थे, इनकी उपस्थितिमें ही किसीने उनके द्वितीय पुत्र श्रीनिताइपदके निधनका संवाद उन्हें दिया। उसे सुन उन्होंने कहा—"जैसी राधारानीकी इच्छा" और पूर्ववत् इनके साथ कथा-वार्त्तामें लग गये।

कामिनीबाबूका भजन-साधन अन्त तक अबाध गतिसे चलता रहा। वे नित्य तीन लाख हरिनाम जप करते हुए अष्टकालीन-लीला-स्मरणमें निमग्न रहते। जैसे-जैसे उनका भजनमें आवेश बढ़ता गया, उनका आहार-

निद्रा कम होता गया। वे २४ घण्टेमें एकबार रात १२ बजे नैश-लीलाके पश्चात् स्मरणमें राधेश्यामको शयन कराकर भोजन करते और आसनपर बैठे-बैठे ही कुछ देर सो लेते! फिर २ बजेसे उठकर निशान्त-लीलाका स्मरण करते।

प्राणगोपाल प्रभु कामिनीबाबूका बड़ा आदर करते। दोनों एक दूसरेको दादा कहकर पुकारते! दोनों एक-दूसरेसे बहुत दूर रहते हुए भी लीला-स्मरणमें एक-दूसरे का संग करते। दोनोंको कभी-कभी एक-सी लीलाके दर्शन होते, जिसमें दोनों एक-दूसरेको मंजरी रूपमें देखते। दोनों एक-दूसरेको पत्र लिखकर उसकी पुष्टि करते।

कामिनीबाबूका लीलामें आवेश दिन-पर-दिन बढ़ता गया। अन्तमें वे हर समय लीलामें आविष्ट रहने लगे। सम्वत् २०१६, ज्येष्ठ मास कृष्णा एकादशीके दिन १०६ वर्ष की अवस्थामें कुञ्जविलास-लीला-कीर्तन सुनते-सुनते उन्होंने निकुञ्जमें प्रवेश किया।

कामिनीबाबूके परिवारके लोगोंका कहना है कि उनकी उम्र जन्म-कुण्डलीके अनुसार ६५ वर्षकी बतायी गयी थी। पर भजनके प्रभावसे बढ़कर १०६ वर्षकी हो गयी। भजनके प्रभावसे सभी कुछ संभव है। भजनका भी एक रस है। उसके आस्वादनका साधकमें जब लोभ

जागता है, तो भक्तवत्सल प्रभु उसकी उम्र बढ़ा देनेको बाध्य होते हैं !

श्रीहरिगोपाल गोस्वामीजी

(ऊँचा गाँव)

श्रीहरिगोपाल गोस्वामी बरसानेकी श्रीजीको प्रकट करनेवाले व्रजाचार्य श्रीनारायण भट्टके वंशज थे। वे ऊँचा ग्रामके श्रीधूलेश्वर गोस्वामीसे दीक्षित थे। अलवर स्टेटमें नीमरानामें रहते थे। वहाँ उनकी गद्दी थी और उनके ठाकुर श्रीलाड़िले सरकारकी सेवा। वहाँके राजा उनके शिष्य थे।

वे एक अच्छे वैद्य थे। वैद्यक द्वारा जीविका चलाते थे। पर पढ़ने-लिखनेका उन्हें बड़ा शौक था। वे हिन्दी, संस्कृत, तेलगू और अंग्रेजी भाषाएँ जानते थे। षड्-दर्शनोंका उन्हें अच्छा ज्ञान था। भागवतके भी वे अच्छे ज्ञाता थे। हरियाणामें उनका बड़ा प्रभाव था। बहुतसे ठाकुर, गूजर और यादवादि उनके शिष्य थे।

वे बड़े सीधे-सच्चे और सादे किस्मके महानुभाव थे। उनका जीवन आडम्बर-शून्य था। पर वे बड़े भजननिष्ठ थे। वृद्धावस्थामें उनका मन अलवरसे ऊब गया और वे एकान्त-भजनके उद्देश्यसे बरसानेके निकट ऊँचा ग्राममें जाकर रहने लगे। अपने लाड़िले सरकारको भी अपने साथ ले गये।

ऊँचा ग्राममें उनके पूर्वजोंका प्राचीन दाऊजीका मन्दिर है, जिसमें नारायणभट्टजी रहा करते थे। उसीमें वे भी रहने लगे। मन्दिरके सम्मुख पहाड़ीके शिखरपर ललिताजीका प्राचीन मन्दिर है। उसकी दाहिनी ओर सघन कुंजोंसे परिवेष्ठित एक सुरम्य निर्जन स्थान है। गोस्वामीजी दिनमें उन कुञ्जोंमें जाकर भजन करते, रात्रिमें घर लौट आते। पर रात्रि भी प्रायः भजनमें और राधारानीकी यादमें रोते-रोते ही व्यतीत करते।

इस प्रकार जीवनके अंतिम २० वर्ष उन्होंने एकान्त भजनमें व्यतीत किये। अब उनकी अवस्था १०० वर्षसे भी अधिक हो चुकी थी। ३० मार्च, सन् १९८०, बैसाखी पूर्णिमाकी रात, पूर्ण स्वस्थावस्थामें वे एकदम चीख पड़े—"मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा। श्रीजीके कपाट खुल गये हैं! पूर्णमासी आ गयी हैं!"

घरके लोग सोते-सोते चौंक पड़े। हक्का-बक्कासे पूछने लगे—"कहाँ जायेंगे? रातके १२ बजे हैं। अभी श्रीजीके कपाट कहाँ खुले हैं?"

कौन जाने उनके शब्द उनके कानमें पड़े भी या नहीं। वे अपनी धुनमें 'राधा, राधा' रटते रहे। राधा-राधा रटते रात २ बजे उनका कपाल फट गया। क्षणभरके लिए कमरेमें एक दिव्य प्रकाश छा गया। उसी समय उनका जड़ शरीर तकियेके सहारे पीछे लुढ़क गया और अपने सिद्ध सहचरी देहसे वे श्रीजीके नित्य-निकुञ्जमें प्रवेश कर गये !

श्रीगौरगोविन्ददास बाबाजी

(पूँछरी, गिरिराज)

पूतके पैर पालनेमें पहचान लिये जाते हैं। गुरुदासजी भी महापुरुषके रूपमें पहचान लिये गये पालने में ही। मेदनीपुर जिलेके अन्तर्गत पिछलदाके निकट द्वारिबेड़ा ग्राममें श्रीहरिप्रसाद बेराके घर सं० १८७६ में उनका जन्म हुआ। बंग देशकी प्रथानुसार अन्नप्राशनके पूर्व जब उनके सम्मुख एक डलियामें सोना, चाँदी, गीता, भागवतादि बहुत-से मांगलिक द्रव्य उपस्थित किये गये, तो वे श्रीमद्भागवत्‌को ही अपने अङ्कमें भर लेनेको चंचल हो

उठे। बाल्यावस्थामें ही उनके शान्त, सौम्य स्वभाव और भगवत्-विषयोंमें असाधारण रुचिको देख लोगोंने समझ लिया कि वे कोई साधारण बालक नहीं हैं।

दस-ग्यारह वर्षकी अवस्थामें उन्होंने मुग्ध-बोध व्याकरण पढ़ ली और ग्रामके अशिक्षित लोगोंको श्रीमद्-भागवत् और चैतन्य-चरितामृत आदि पढ़कर सुनाने लगे। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी, भगवत्-विषयमें उनकी जिज्ञासा और आर्तिका विकास होता गया। भाग्यसे उनके घरके निकट एक पर्णकुटीमें श्रीमधुसूदनदास बाबाजी, एक परम विरक्त और भजनानन्दी महात्मा रहते थे। उनका सत्संग उन्हें सुलभ था। उन्होंने उन्हें सुपात्र जान महामन्त्रका उपदेश किया। उपदेश करते हुए कहा—

"यह श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित सोलह नाम बत्तीस अक्षरयुक्त श्रीकृष्ण-नाम महामन्त्र है। यदि तुम श्रीकृष्ण की कृपा लाभ करना चाहते हो, तो इसका जप करो। कलिकालमें इसके सिवा जीवकी गतिका और कोई उपाय नहीं है—

हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्तैव, नास्तैव, नास्तैव गतिरन्यथा।।

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

"कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।
नाम हैले हय सर्व जगत निस्तार।।"

(चै० च० १/१०)

—कलिकालमें श्रीकृष्ण नामरूपमें अवतार लेकर सारे जगत्‌का निस्तार करते हैं।"

सभी वस्तुओंका नाम उनसे भिन्न होता है। पर कृष्णका नाम कृष्णसे भिन्न नहीं है। श्रीकृष्ण अखण्ड, अद्वय तत्व हैं। इसलिये श्रीकृष्णका जो नाम है, वही श्रीकृष्ण हैं। प्राकृत शब्दकी तरह प्रतीत होनेपर भी श्रीकृष्ण-नाम सच्चिदानन्दरूप है।

श्रीकृष्णकी तरह ही कृष्ण-नाम अनन्त शक्ति और अनन्त करुणा-सम्पन्न है। कृष्ण-नाम कृपाकर साधकको भजनके योग्य बनाता है। धीरे-धीरे उसके हृदयकी मलीनता दूरकर उसे अपने रूप और लीलाको धारण करने योग्य बनाता है। कृष्ण-नाम साधन भी है, साध्य भी। साधन रूपमें वह तबतक सक्रिय रहता है, जबतक साधकके हृदयमें कृष्ण-प्रेम उदय नहीं होता। कृष्ण-प्रेम के उदय होनेपर कृष्ण-नाम ही श्रीकृष्ण और उनकी लीला के रूपमें साधकके हृदयमें स्फुरित होता है।

पर इस बातका विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए कि अपराध और अभिमान-शून्य हृदयमें ही हरिनाम अपने प्रभावका विस्तार करता है। जिस प्रकार वर्षाका जल ऊँचे स्थानोंको छोड़ता हुआ नीचेकी ओर ढलता है और सबसे नीचेके स्थानमें जाकर संचित होता है, उसी प्रकार नामकी कृपा अभिमानी व्यक्तियोंको छोड़कर निर-भिमानी व्यक्तियोंकी ओर ही ढलती है और जो सब प्रकारसे अभिमान-शून्य होते हैं, उन्हींके हृदयमें स्थायी

रूपसे जाकर टिकती है। अभिमानशून्यता आर्तिको जन्म देती है और आर्ति भगवान और उनकी कृपाको आकर्षित करती है। दैन्य जितना वृद्धिको प्राप्त होता है, उतना ही अपराध क्षीण होता है, उतना ही भक्ति देवी प्रसन्न हो कृपा करनेको विवश होती हैं।"

मधुसूदनदास बाबाका यह उपदेश गुरुदासके हृदयमें घर कर गया। उनका जीवन नाममय हो गया। वे एकान्तमें बैठकर हर समय नाम-जप करते या गाँवके बच्चोंको एकत्रकर कीर्तन करते। कीर्तन करते-करते बेसुध हो जाते। उनके माता-पिता उनकी इस प्रकारकी अवस्था देख चिंतामें डूब गये। उन्होंने बहुत चेष्टा की उन्हें समझा-बुझाकर कुछ संसारकी ओर उनका मन मोड़ने की। पर उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। तब उन्होंने श्रीमधुसूदनदास बाबाजीसे परामर्श कर गुरुदासको उनके साथ तीर्थ यात्राको भेज दिया।

दोनोंने गौरमंडलके तीर्थोंकी यात्रा की। यात्राके बीच उन्होंने अम्बिका कालनामें महाप्रभुके परिकर श्रीगौरी पंडितके निताइ-गौरके श्रीविग्रहके दर्शन किये। गुरुदासने इस अवसरका लाभ उठाकर गौरी पंडितके वंशज श्रीपाद अखिलचन्द्र ठाकुर गोस्वामीसे मन्त्र-दीक्षा ली। एक वर्ष तक तीर्थ-भ्रमण करनेके पश्चात् गुरुदास घर लौटे। उनकी मानसिक स्थितिमें परिवर्तन हुआ अवश्य। पर वैसा नहीं जैसा उनके माता-पिताने आशा की थी। वरंच उसके बिलकुल विपरीत। तीर्थ-यात्रामें

उन्हें बाबा गौरकिशोरदासजी जैसे सिद्ध महात्माओंका संग करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परिणाम-स्वरूप संसारसे उन्हें और अधिक विरक्ति हो गयी थी। उन्होंने उन्हें रूप-सनातनके समान सब कुछ त्याग कर वृन्दावन में भजन करनेका उपदेश दिया था।

सं० १९५४ में उनकी माँका देहान्त हो गया। शरीर त्यागनेके पूर्व उन्होंने गुरुदासको निकट बुलाकर कहा—"बेटा, विवाह करना।" माँके इन शब्दोंसे उन्हें मर्मान्तिक कष्ट हुआ। वे बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये। माँके अन्तिम आदेशका पालन करें या गौरकिशोरदास बाबाके आदेशानुसार रूप-सनातनके पथका अनुसरण करें।

उसी वर्ष माँके देहावसानके कुछ दिन बाद उनके शिक्षा-गुरु श्रीमधुसूदनदास बाबाजी शेष जीवन वृन्दावन में व्यतीत करनेके उद्देश्यसे सदाके लिए द्वारिबेड़ा छोड़कर वृन्दावन चले गये। इससे उन्हें और अधिक कष्ट हुआ। द्वारिबेड़ामें उनके पारमार्थिक जीवनका जो एकमात्र अवलम्ब था, वह भी जाता रहा। अब उनके लिए वहाँ गुरुदेव और वृन्दावनकी यादमें रोने और "हा, गुरुदेव! हा, वृन्दावन!" कहकर पछाड़ खाने और मूर्छित हो जानेके सिवा और क्या रहा?

हरिप्रसादजीने सोचा कि पुत्रको स्वस्थ करनेका एक-मात्र उपाय है विवाह। उन्होंने दो-चार दिनके भीतर ही एक लड़कीके घरवालोंसे बातचीत कर विवाह कर

दिया। गुरुदासके लिए विवाहकी रातसे बड़ी संकटकी घड़ी और क्या हो सकती थी? उन्हें भयंकर वेदना हो रही थी। उन्होंने अपने भविष्यके जो स्वप्न देखे थे, वे अब बिखरकर धूलमें मिलतेसे जान पड़ रहे थे। उन्हें लग रहा था कि वे जीवनके ऐसे चौराहेपर आ खड़े हुए हैं, जहाँ सोचने-विचारनेका अब समय बिलकुल नहीं है। उन्हें तुरन्त फैसला करना है कि उन्हें मायाकी लोभनीय पुष्पवाटिकाकी ओर पदार्पण करना है, या त्याग और वैराग्यके कंटकाकीर्ण पथका अवलम्बन करना है। उन्हें निर्णय करनेमें देर न लगी। वे उसी रात संसार त्याग करनेका निश्चय कर घरसे निकल पड़े। लुक-छिपकर धानके खेतोंमेंसे होकर दौड़ते-भागते द्वारिबेड़ासे बाहर हुए। कई दिन तक लगातार चलते-चलते नवद्वीपके निकट पहुंचे। हारे-थके, भूखे-प्यासे उन्होंने वहाँ एक महात्माके आश्रममें आश्रय लिया। महात्माने स्नेहपूर्वक उनसे कई दिन वहाँ रह जानेका आग्रह किया। गुरुदासजी वहाँ रुक गये। महात्माके साथ इष्ट-गोष्ठीमें उन्हें बड़ा सुख मिला। उनके शुद्ध अंतःकरण और शुद्ध, सरल, स्निग्ध स्वभावको देख महात्माका भी वात्सल्य उमड़ पड़ा। उन्होंने कहा—"वत्स, मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। अधिक दिन नहीं रहूँगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम मुझसे वेश लेकर इस आश्रमके महन्त हो जाओ।"

गुरुदासने सोचा—"यह कैसा संकट फिर आ गया! किसी प्रकार एक बन्धनसे निकलकर आया, दूसरा सामने

आया।" उन्होंते विनय पूर्वक कहा—"बाबा, क्षमा करें। मेरा मनोभृंग पहले ही श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके पादपद्ममें विक चुका है।"

महात्मा यह सुन आग-बबूला हो गये। उन्होंने तत्काल शाप दिया—"जाओ, तुम्हारा इस जन्ममें भजन-साधन नहीं होगा।"

गुरुदास दु:खित हो वहाँसे चल दिये। नवद्वीप जाकर उन्हें पता चला कि गौरकिशोरदास बाबाजी किसीको वेश नहीं देते। तब उन्होंने नवद्वीपके 'बड़े अखाड़े' के महन्तजीसे वेश लिया। वेशका नाम हुआ श्रीगौर-गोयिन्ददास। वेश लेकर वे महन्तजीके साथ श्रीगौर-किशोरदास बाबाजीके पास उपदेशके लिए गये।

उन्होंने उपदेश देते हुए कहा—"श्रीरूप-सनातनके वेशकी मर्यादाकी रक्षा करना। अर्थको काल समझना। किसी स्त्रीसे सम्भाषण न करना। महाप्रभुने छोटे हरिदासको अपनी ही सेवाके लिए एक वृद्धा स्त्रीसे अन्न माँग लानेके कारण जो दण्ड दिया था, उसे स्मरण रखना। व्रजधाममें किसी महाभागवतके आनुगत्यमें रह-कर भजन करना। व्यावहारिक प्रीतिके बंधनमें न फँसना। व्रजवासियोंके घर मधुकरी माँगकर जीवन निर्वाह करना।"

गुरु-शिष्य दोनों उनके चरणोंकी वन्दना कर बड़े अखाड़े लौट गये। पर गौरगोविन्ददासको शान्ति नहीं।

उनका हृदय शाप देने वाले महात्माके चरणोंमें हुए अपराधके कारण अनुतापसे दग्ध हो रहा था। गुरुदेवके आदेशसे वे उनके पास गये और बहुत अनुनय-विनय कर क्षमा-प्रार्थना की। पर महात्माका क्रोध अभी भी शान्त नहीं हुआ था। उन्होंने डाट-फटकार कर उनसे अपने पाससे चले जानेको कहा।

वे फिर रोते-धोते गुरुदेवके पास पहुँचे। गुरुदेवने कहा—"तुमने महात्माके प्रति अपने कर्तव्यका पालन किया। अब यदि वे प्रसन्न नहीं होते तो क्या करोगे? नामका आश्रय लो। नामकी शक्तिसे अवश्य तुम्हें महात्माके शापसे मुक्ति मिलेगी।"

गौरगोविन्ददास बाबा नाम-जप करने लगे। कुछ ही दिन बाद महात्मामें अनायास परिवर्तन हुआ! उनका हृदय अनुतापानलसे दग्ध होने लगा। उन्हें भासने लगा कि उन्होने एक निरपराध बालकको शाप देकर अन्याय किया है। वे भागे आये बड़े अखाड़े और गौरगोविन्द-दाससे बोले—"मैंने तुम्हारी प्रार्थना अनसुनी की, उसी दिनसे मुझे असहनीय यन्त्रणा हो रही है। मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। अब यदि तुम क्षमा नहीं करते, तो मेरी गति नहीं है।"

गौरगोविन्ददास रोते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने उठाकर उन्हें आलिंगन किया और उनके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। दोनों महात्माओंके हृदय में नामकी कृपासे शांतिका संचार हुआ।

गौरगोविन्ददास बाबा गुरुदेवकी अनुमति ले सम्वत् १९५७, अग्रहायण मासमें सुमधुर वृन्दावन धामकी ओर चल पड़े। फाल्गुनके शेष भागमें वे वृन्दावन पहुँचे। कुछ दिन व्रजमें भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णकी लीला-स्थलियोंका दर्शन किया। वे दिनमें नाम-जप करते हुए भ्रमण करते। रातमें किसी वृक्षके नीचे विश्राम कर लेते। व्रजवासियोंकी मधुकरीसे पेट भर लेते।

तदनन्तर वे वृन्दावनमें श्रीश्यामसुन्दरजीके मन्दिरकी समाज बाड़ीमें रहकर भजन करने लगे। वे कालीदहके सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाजी महाराजका संग करते। नित्य संध्या समय उन्हें चैतन्य-भागवतका पाठ सुनाते। बाकी समय अपनी कुटियामें बैठकर हरिनाम करते।

किसी वैष्णवने उन्हें सलाह दी सिद्ध कृष्णदास बाबा की 'गुटिका' का अभ्यास करने की। उन्होंने अभ्यास आरम्भ किया। पर उसके कारण वे नाम-जपकी सख्या पूरी न कर पाते। संख्या पूरी न कर सकनेके कारण वे चिंतामें पड़ गये। उन्होंने श्रीजगदीशदास बाबासे पूछा, क्या करना चाहिये। उन्होंने कहा—"पहले नाम-संख्या पूरी करो। उसके पश्चात् यदि समय मिले तो गुटिकाका अभ्यास करो।" पर उनकी नाम-जपकी संख्या इतनी थी कि सारा समय उसीमें निकल जाता। उस अभ्यासके लिए समय न मिल पाता।

थोड़े दिनोंमें उनके भजनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी और दर्शनार्थियोंकी भीड़ उनकी कुटियापर लगने

लगी। इसलिये वे गोवर्धनसे चार मील पूर्व 'अरिं' नाम के स्थानमें जाकर रहने लगे। वे नित्य अरिंसे गोवर्धन जाते और गिरिराजकी परिक्रमा कर लौट आते। इस प्रकार उन्हें नित्य २० मील चलना पड़ता।

कुछ दिन बाद वे अरिंके पूर्वोत्तर किल्लोल-कुंडके पास एक भग्न कुटीमें रहने लगे। उनका भजन और गिरिराज की परिक्रमा पूर्ववत् चलता रहा। उनके भजनके प्रताप से दिव्य शक्तियोंका उनमें विकास होने लगा। एक दिन एक व्रजवासीके करुण क्रन्दनसे द्रवित हो उन्होंने उसे सांत्वना देनेको उसके अतीत और भविष्यकी बहुत-सी बातें कह डालीं। उस दिनसे उनके दैन्यमें ह्रास होने लगा और भजनमें बाधा पड़ने लगी, जिससे उन्हें बहुत चिंता हुई।

उस समय पूँछरीमें राघव पंडितकी गुफामें श्रीराम-कृष्णदास पंडित बाबा भजन करते थे। उनके पास जाकर उन्होंने अपनी चिंता व्यक्त की। उनकी कृपा और उपदेश से उनका सर्वज्ञताका भाव शान्त हुआ और भजनमें प्रगति होने लगी।

पंडित बाबाने उन्हें आगेके लिए सचेत करते हुए कहा—"नाम कल्पतरु है। इससे साधकको सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। यदि साधक नाम-जप करते हुए श्रीकृष्णकी शक्तियोंका चिंतन करता है, तो उसमें उनकी शक्तियोंका आविर्भाव होता है। यदि वह उनके प्रियता-

धर्मका चिंतन करता है, तो उसमें प्रियताका संचार होता है, और जिस परिमाणमें उसमें प्रियताका संचार होता है, उसी परिमाणमें वह उनके लीला-माधुर्यका आस्वादन करता है। प्रियत्वके अनुभव बिना केवल श्रीकृष्णकी हृदयमें स्फूर्तिसे उनके माधुर्यका अनुभव नहीं होता। उससे सर्वज्ञता आदि लक्षणोंका विकास होने लगता है, जो भजनमें बाधक हैं।"

तबसे गौरगोविन्ददास बाबा पंडित बाबाकी इष्ट-गोष्ठी में नित्य सम्मिलित होने लगे। एक दिन जेठके महीनेमें नृसिंहजीके मन्दिरके प्रांगणमें इष्ट-गोष्ठी हो रही थी। यकायक आकाश मेघोंसे छा गया। प्रबल आँधीके साथ घनघोर वृष्टि होने लगी। गौरगोविन्ददास बाबाने कहा– 'अच्छा होता यदि वृष्टि थोड़ी देर बाद होती, जब हम लोग अपनी-अपनी कुटियापर पहुँच जाते।"

यह सुन पंडित बाबा उत्तेजित हो बोले—"अभी तक कामनाकी निवृत्ति नहीं हुई। अपने सुख-सुविधाकी कामना रखनेसे कहीं भजन होता है? अपने इहकाल और परकालकी समस्त सुख-सुविधाओंकी कामनाका परित्याग कर एकमात्र श्रीकृष्णके सुखकी कामना करनेसे ही भजनमें सिद्धि होती है।"

कुछ दिन बाद गौरगोविन्ददास बाबा पंडित बाबाके आदेशसे पूछरीमें अप्सरा-कुण्डके निकट एक कुटीमें रहकर भजन करने लगे। उस निर्जन स्थानमें उनके और उनके

सेवक श्रीलाड़िलीदास बाबाके सिवा और कोई न था। केवल बेलके वृक्षके रूपमें एक महात्मा, उनकी कुटियाके बाहर भजन करते थे। वे उनसे अपने मनकी कुछ कह-सुन लिया करते थे। उनमें जब प्रथम बार फल आये, तो एक दिन अपने स्वरूपमें प्रकट होकर वे बाबासे बोले—"तुमने मुझे सींचकर बड़ा किया है। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। मेरे फल पक जायें तो इन्हें वृन्दावनके सब देवालयोंमें और वृन्दावनके महात्माओंको उनकी कुटियोंमें ठाकुर-सेवाके लिए दे आना।" बाबाने वैसा ही किया।

एक बार उस वृक्षपर किसीने अपनी धोती सूखनेको डाल दी। उसी दिन उन्होंने बाबासे स्वप्नमें कहा—"मेरे ऊपर किसीको कपड़े न सुखाने दिया करो। मेरे भजनमें विघ्न पड़ता है।"

बाबाके भजनमें क्रमशः वृद्धि होती गयी। उनकी नाम-संख्या बढ़कर ८ लाख तक हो गयी। उनके पास संयोगवश रात दो बजे भी कोई पहुँच जाता, तो उन्हें नाम-जप करते पाता। यदि वह कहता—"बाबा, आप क्या रातमें भी विश्राम नहीं करते ?" तो वे उतर देते—"नहीं, नहीं, मैं अभी-अभी ही तो उठा हूँ।"

एकबार उन्हें एक विषधर सर्पने काट लिया। पर उनके चित्तमें उससे किसी प्रकारका विक्षेप न हुआ। वे निर्विघ्न नाम-जप करते रहे। नामरूपी संजीवनी-बूटीने उनपर उसके विषका कुछ भी असर न होने दिया।

अंतमें बाबाका सोना-जगना एक-सा हो गया। रात-रातभर जागकर जप करना और नृत्यके साथ भावपूर्ण मुद्रामें रोदन करते हुए नाम-कीर्तन करना उनका साधारण कृत्य हो गया।

आदि पुराणमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

"गीत्वा च मम नामानि नर्त्येन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥
गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः॥

—हे अर्जुन मेरा नाम गा-गाकर जो मेरे सामने नृत्य करते हैं, मैं सच कहता हूँ, मैं उनके हाथ बिक जाता हूं। जो मेरे नामका गानकर मेरे सामने रोदन करते हैं, मैं सभी प्रकारसे उनके द्वारा क्रीत, उनके वशीभूत हो जाता हूँ; और किसीके भी द्वारा मैं क्रीत नहीं होता।"

गौरगोविन्ददास बाबाका तो उनका नाम-गान करने और उनकी यादमें रोने-धोनेके सिवा और कोई काम ही न था। इसलिये श्रीकृष्णका उनके हाथ विक जाना और उनके वशीभूत हो जाना स्वाभाविक था। वे कितना उनके हाथ विक गये थे, इसका एक घटनासे अनुमान लगाया जा सकता है।

एक दिन बाबा वृष्टि हो जानेके कारण मधुकरीकर रातमें देरसे लौटे। भूख जोरकी लगी थी। मधुकरी आरोगनेके पूर्व ठाकुरको भोग लगाना भूल गये। एक

ग्रास खाकर निगल रहे थे, उसी समय याद आया कि भोग नहीं लगाया। उन्होंने तुरन्त कण्ठ पकड़ लिया। फिर भी ग्रास नीचे उतर गया। उन्हें अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। भूख-प्यास का न जाने क्या हो गया। मधुकरीके टूक सामने वैसे-के-वैसे ही पड़े रहे। तब कुटियाके भीतरसे ठाकुरके मधुर कंठकी ध्वनि सुनाई दी। उन्होंने कहा—"नित्य व्रजवासियोंकी जूठी खिलाता है। आज अपनी जूठी खिलानेमें संकोच क्यों करता है? अब भोग लगादे न।"

ठाकुरकी आवाज सुन बाबाके रोंगटे खड़े हो गये। अश्रु-कम्पादि सात्विक भावोंसे उनका शरीर परिपूर्ण हो गया। उन्होंने सकुचाते-सकुचाते अपनी जूठी मधुकरीका ठाकुरको भोग लगाया। तब स्वयं उसे ग्रहण किया। उस मधूकरीमें उन्हें जो स्वाद मिला, वह पहले कभी किसी स्वादिष्ट भोजनमें नहीं मिला था। जाहिर है कि उस दिन ठाकुरने मधूकरी बड़े प्रेमसे आरोगी थी। उससे उन्हें जो तृप्ति हुई थी, वह बाबा द्वारा समर्पित मधूकरीसे पहले कभी नहीं हुई थी।

कैसा अनोखा है व्रजका यह ठाकुर! अपने भोले भक्तोंके सामने उसकी ठकुराई न जाने कहाँ चली जाती है। ठकुराई छोड़ उनसे घुल-मिल जानेको वह कितना व्याकुल हो उठता है! उनकी जूठी खाकर और उन्हें अपवी जूठी खिलाकर, उनकी सेवा ग्रहणकर और उनकी

सेवा स्वयं कर वह कितना तृप्त होता है, कितना अपनेको धन्य मानता है !

हाय ! कितना कृतघ्न और आत्मघाती है वह जीव, जो ऐसे ठाकुरको नहीं भजता, जिसके कोटि-कोटि प्राण उसपर न्यौछावर होनेको मचल नहीं उठते !!

सं० २०१६ माघ बदी प्रतिपदाको बाबाने नित्य-लीला में प्रवेश किया। अप्सराकुण्डके निकट उनकी और उनके सेवक श्रीलाड़िलीदास बाबाकी समाधि है।

श्रीहरेकृष्णदास बाबाजी

(राधाकुण्ड)

भजनानुरागी व्यक्तिको किस प्रकार समयका सदुपयोग करना चाहिये, इसका उज्जवल दृष्टान्त श्रीहरेकृष्णदास बाबाके जीवनमें देखनेको मिलता है। उन्होंने किसी एक स्थानमें रहकर भजन नहीं किया। पर वे जहाँ भी रहे वहाँ इस प्रकार रहे कि देह सम्बन्धी कार्योंमें कम-से-कम समय लगे और भजनमें अधिक-से-अधिक। वे शेष रात्रिमें उठते। माला रख और करुवा हाथमें ले

भागते-भागते जाते शौच और स्नानादि करने। लौटकर आते भागते-भागते और झटपट तिलकादि कर भजनमें बैठ जाते। मध्याह्नमें भजनसे उठते। स्नानादिकर एक टूटे-फूटे शीशेकी सहायतासे तिलक करते, तुलसी तले गिरिराजको दो पत्ते तुलसीके चढ़ाकर मधुकरीका झोला हाथमें ले मधुकरीको जाते। शीघ्र मधुकरीसे लौटकर हस्तलिखित चाटु-पुष्पाञ्जलिके भाषानुवादके कुछ पृष्ठ पढ़ और मधुकरी ग्रहण कर भजनमें बैठ जाते। सन्ध्या समय फिर शौच-स्नानादि कर भजनमें बैठते। रात्रिमें सोते या जागते कोई नहीं जानता। पर वे रात्रिमें भोजन बिलकुल न करते।

वृद्धावस्थामें वे राधाकुण्डमें नूतन घेरेमें रहकर भजन करने लगे थे। उनका तीव्र अनुराग देख एक बार श्रीकामिनीकुमार घोषने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा—"मैं बाल्य-कालसे ही निद्रातुर हूं। भजन-साधन नहीं कर पाता। आप मेरे ऊपर कुछ कृपा करें।"

उन्होंने कहा—"जब नव-दम्पतिका मिलन होता है, तब क्या उन्हें निद्रा आती है? प्राणमें अनुराग जागनेसे निद्राका अपने-आप लोप हो जाता है। तुम्हारे सिद्ध देहमें किस अंगमें कौन-सा अलंकार है, इसका ध्यान किया करो।"

कामिनीबाबूने पूछा—"क्या मैं कभी-कभी आपके दर्शन करने आ सकता हूँ?"

उन्होंने उत्तर दिया—'आना, पर बहुत देर तक मत बैठना।"

इसके कुछ ही दिन बाद शरदपूर्णिमाकी रात्रिमें वैष्णवगण कीर्तनके साथ कुण्ड-परिक्रमा कर रहे थे। उस समय उन्होंने उनकी कुटियाके निकट उन्हें पुकारा। उन्होंने कुछ उत्तर दिया या नहीं कीर्तनकी ध्वनिमें न जाना जा सका। कीर्तनसे लौटकर वैष्णवोंने ठाकुरको खीरका भोग लगाया। जब उन्हें प्रसाद देने गये तो देखा कि उन्होंने आसनपर बैठे-बैठे ही देह त्याग दिया है। वे जान गये कि उन्होंने उस शरद-पूर्णिमाकी रात्रिमें रासमें प्रवेश पा लिया।

श्रीहरिसुन्दर भौमिक भुजा

(वृन्दावन)

बंगालके पावना जिलेमें सिराजगञ्जके निकट कयड़ा ग्राम है। वहाँ श्रीकृष्णमोहन भौमिकके घर श्रीहरिसुन्दर भौमिकने जन्म लिया। वंश-परम्परानुसार श्रीनरोत्तम ठाकुरके परिवारमें दीक्षा ली। थोड़े ही दिन संसार-कार्य कर जब गुजर करने लायक धन एकत्र हो गया, तब महत् कृपासे भक्ति राज्यमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही

भजनमें ऐसा डूबे कि भक्तोंके साथ श्रवण-कीर्तनादिमें देह-गेह, दिन और रात सब भूल जाते। शारीरिक नियमोंकी भी रक्षा न कर पाते। इसलिये अकस्मात् उत्कट व्याधिग्रस्त हो पड़े।

भक्तोंकी विपत्ति भी सहायक सिद्ध होती है। व्याधि के कारण जीवन थोड़ा ही अवशिष्ट जान वे केवल भजन में आविष्ट रहने लगे। परिणाम-स्वरूप उन्हें शीघ्र भाव-भक्ति प्राप्त हुई।

सन् १८९० में वे सपरिवार वृन्दावन गये। वहाँ राजर्षि बनमाली रायसे भेंट हुई। दोनों एक-दूसरेका परिचय प्राप्तकर परमानन्दित हुए। बनमालीरायने उन्हें शिक्षा-गुरुके रूपमें स्वीकार किया और उनका अधिकसे-अधिक संग लाभ करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने निकट ही रख लिया। कुछ दिन वृन्दावन रहकर दोनों नवद्वीप होते हुए अपने-अपने घर चले गये। पर वहाँ जाकर भी एक-दूसरेके यहाँ आना-जाना लगा रहा। कभी बनमाली राय अपने ठाकुर श्रीराधा-विनोद और परिवारके साथ भौमिकजीके घर कयड़ा ग्राम जाकर रहते, कभी भौमिकजी सपरिवार बनमालीरायकी राजधानी बनवारी नगर जाकर रहते।

सन् १८९४ में बनमालीराय राधाविनोदजी, अपने परिवार तथा भौमिकजी और उनके परिवारको साथले वृन्दावन आये। तबसे सन् १९०४ तक, जब भौमिक महाशयको रजप्राप्ति हुई दोनों एक साथ वृन्दावनमें रहे।

भौमिक महाशय सर्वदा भावाविष्ट रहते। कभी भी उन्हें राधारानीके चरण विस्मृत न होते। सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर समय राधारानीकी स्मृति उनके साथ रहती। सोते-जागते, खाते-पीते राधारानीकी विस्मृति होना तो दूर, उन्हें राधारानीकी स्मृति खाने-पीने, सोने-जागनेकी अकसर विस्मृति करा देती। कई-कई दिन बिना आहार और निद्राके व्यतीत हो जाते। बीच-बीचमें उत्कट व्याधि भी हो जाती। पर यह देखकर लोग विस्मित हो जाते कि भीषण कष्टकी अवस्थामें भी उनके मन-प्राण राधारानीके चरणोंसे विलग न होते।

सन् १९०४ के आषाढ़ मासमें राजर्षि वनमालीरायके कामदार भक्त श्रेष्ठ श्रीकामिनीबाबूको बंगाल जाना था। जानेके पूर्व वे भौमिकजीसे अनुमति लेने गये। उन्होंने कहा—"जा रहे हो तो जाओ, जल्दी आना। मुझे अब अधिक नहीं रहना है। साक्षात् दर्शनकी मेरी साध पूरी हो चुकी है।"

आश्विनकी १७ ता० को कामिनीबाबू वृन्दावन लौट आये। भौमिकजीको प्रणाम करने गये, तो वे बोले—"आ गये, ठीक किया।" चार-पाँच दिन पीछे सामान्य ज्वरके पश्चात् कार्तिक कृष्णा एकादशीके दिन ६५ वर्षकी अवस्थामें वे नित्य-धाम पधारे।

श्रीविश्वरूपदास बाबाजी

(वृन्दावन)

परम पंडित, वैराग्यवान् और मितभाषी श्रीविश्वरूप दास बाबाजी वृन्दावनके सिद्ध तोतारामदास बाबाके आश्रमके अधिकारी रूपमें भजन करते थे। उस समय राधाकुण्डके वैष्णवोंकी पंचायतकी ओरसे श्रीश्याम-कुण्ड के पंकोद्धारकी योजना बनाई गयी। उन्होंने श्यामकुण्ड-का जल तो जैसे-तैसे सब निकलवा दिया। पर अर्थाभाव के कारण पंकोद्धारका कार्य न करा सके। उसी समय विश्वरूपदास बाबा एक दिन राधाकुण्ड गये। श्यामकुंड-की अवस्था देख उन्हें रोना आ गया। उन्होंने उसका संस्कार करानेका संकल्प किया।

कार्य सहज नहीं था, क्योंकि कुण्डकी अवस्था बहुत ही खराब थी। एक बार श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके समय उसका संस्कार हुआ था। उसके पश्चात् फिर कभी संस्कार नहीं हुआ। फिर भी राधारानीका स्मरण कर और उनकी कृपाका भरोसा रख उन्होंने इसे कराने-का बीड़ा उठा लिया।

राजर्षि बनमालीराय बहादुर उन दिनों राधाकुण्डमें अपनी राजबाड़ीमें रहकर भजन करते थे। उनसे उन्होंने कहा—"इस कार्यका समाधान आपको करना होगा। मैं जगह-जगह जाकर भिक्षा करूंगा। जो धन प्राप्त

होगा आपके पास लाकर जमाकर दूँगा। पर आपको इस कार्यको करानेकी बाकी व्यवस्था करनी होगी।"

राजर्षिजी सहमत हुए। उन्होंने स्वयं पाँच हजार रुपये दिये। बाकी धन विश्वरूपदास बाबाने स्वयं जुटाया, इसके लिए उन्हें दो-तीन वर्ष तक लगातार बहुत परिश्रम करना पड़ा। दूर-दूर जाकर भिक्षा करनी पड़ी। उन्हें जो भी भिक्षा मिलती राजर्षिजीके पास लाकर जमा कर देते। यातायातमें जो खर्च होता उसे अन्य प्रकारसे अलगसे जुटाते। कुण्डके संस्कारके लिए पत्र-व्यवहार तकमें उसके लिए प्राप्त भिक्षामेंसे खर्च न करते। उनके उद्योगसे २-३ सालमें यह कार्य सम्पन्न हुआ। फलस्वरूप उन्होंने कुण्डवासी सब वैष्णवोंका तो कृपा-आशीर्वाद प्राप्त किया ही, श्रीराधा-श्यामसुन्दर की भी विशेष कृपा प्राप्त की।

श्रीदयालदास बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीदयालदास बाबा कब कहाँसे आये, किसके शिष्य थे और क्या भजन करते थे कोई नहीं जानता। पर वे अपने वैराग्य और भजनावेशके लिये जितना व्रजमण्डलमें प्रसिद्ध थे, उतना ही गौड़मण्डलमें भी। वे अपने पास कंथा, करुआ, कौपीन और बहिर्वासके सिवा और कुछ न रखते। प्राय: व्रजमें ही जहाँ-तहाँ घूमते रहते। अकसर कंथासे सिर ढककर एक ही स्थानपर निश्चल भावसे चौबीस-चौबीस घंटे बैठे रहते। दूरसे लगता जैसे कोई गठरी रखी हो।

वे अधिकतर मौन रहते। पर मधुकरी भिक्षाके समय व्रजवासी गृहस्थके दरवाजेपर उच्च स्वरसे 'हरे कृष्ण' कहते। यदि वह उससे भी ऊँचे स्वरसे 'हरे कृष्ण' कहता, तो भिक्षाके लिए रुक जाते, नहीं तो आगे बढ़ जाते। वे अंधे थे, फिर भी चुटकी[1] भिक्षा करते थे और स्वयं पकाकर खाते थे।

राजर्षि बनमालीरायसे वे कभी-कभी व्रजवासियोंकी सेवाके लिये कुछ अर्थ माँग लेते थे। पर अपने व्यवहारमें पैसा-कौड़ी कभी नहीं लाते थे। यदि कोई कुछ दे जाता था, तो उसे राजर्षि बहादुरकी पत्नीके पास रख देते थे। इस प्रकार राजर्षि बहादुरकी पत्नीके पास तीन

---

१. आटा या चावल

सौ रुपये हो गये। तब एक दिन उन्होंने सब रुपये माँग लिये और जमुना किनारे बैठकर एक-एक कर सब जमुना में फेंक दिये।

उनकी अलौकिक शक्तिका पता चला जब एक दिन उन्होंने राजर्षि बहादुरके बड़े भाई श्रीगिरिधारीदास बाबाजी (पूर्वाश्रमके श्रीअन्नदा बाबू) पर विशेष कृपा की। गिरिधारीदासजी उन दिनों गोवर्धनमें गोविन्दकुण्ड पर भजन करते थे। वे दयालदास बाबाको साथ ले व्रजके कुछ गाँवोंमें प्राचीन लीला-स्थलियोंके दर्शन करने गये। उन्हें हरनियांकी बीमारी थी और वे ट्रस[1] पहना करते थे। दूसरे दिन किसी कुण्डमें स्नान करते समय उन्होंने ट्रस खोला। दयालदास बाबाने पूछा—"यह क्या है ?" उन्होंने कहा—मुझे हरनियाँ हैं। हरनियाँमें इसे पहरना आवश्यक होता है।"

बाबाने कहा-"उसे फेंक दो। अब उसकी आवश्यकता न होगी।"

उन्होंने ट्रस फेंक दी। उसी समयसे उनका हरनियाँ भी न जाने कहाँ चला गया। उन्हें सारा जीवन हरनियाँकी शिकायत फिर नहीं हुई।

शेष जीवनमें बाबा वृन्दावनमें कालीदहपर सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाकी कुटियाके पीछे एक कुटियामें रहने लगे थे। श्रीप्राणकृष्णदास बाबा तब उनकी सेवा करते थे।

१. कमरमें बाँधनेका एक यंत्र

श्रीहरिदास बाबाजी

(गोविन्दकुण्ड, गोवर्धन)

वृन्दावनके दयालदास बाबाजी महाराजके शिष्य श्रीहरिदास बाबाजी ने पहले ७/८ वर्ष आरिट् ग्राममें, फिर १० वर्ष गोविन्दकुण्डमें, फिर ५ वर्ष पैंठा ग्राममें और अन्तमें ६ वर्ष जतिपुरामें रहकर भजन किया। जब वे गोविन्दकुण्डमें भजन करते थे, श्रीअद्वैतदास बाबाजी भी उन्हींके निकट एक कुटियामें रहते थे। वे उनकी बाह्य और अन्तरिक दशासे भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने उनके विषयमें श्रीहरिदासदासजीको जो बताया था, उसका उल्लेख उन्होंने 'गौड़ीय-वैष्णव-जीवन' में इस प्रकार किया है—

श्रीहरिदास बाबाजी व्रजमें उत्पन्न अन्नकी बनी व्रजवासियोंकी मधुकरी पाते, व्रजको रजके बने पात्र और व्रजके ही बने आसन-वसनादिका व्यवहार करते। अपनेको नीचातिनीच जान भीत-भीतसे सबसे दूर रहकर एकान्तमें भजन करते। कहीं जाते समय एक जीर्ण कन्था उनके कन्धेसे लटकता रहता, जो उनके पीछे उनके चरण-चिह्नोंपरसे घिसटता हुआ उन्हें मिटाता चलता, स्वयं वे व्रजमें सर्वत्र श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंका अन्वेषण करते चलते।

उनकी जिह्वाने स्वाद किसे कहते हैं कभी नहीं

जाना। यदि कोई उनके पास मिष्ठान्नादि प्रसाद लेकर आता, तो उसे बड़े आदरसे ग्रहण करते। कुटियाके भीतर जाकर उसमेंसे रञ्च मात्र लेकर प्रसादरूपसे उसका सम्मान करते। बाकी एक रजके पात्रमें अलग रख देते। पहलेसे रखी कुछ शुष्क मधुकरी खाकर कुटियासे बाहर निकलते। प्रसाद लानेवाले सज्जनसे कहते—"मैंने आपका दिया प्रसाद सब पा लिया।" रात्रिमें वनमें जाकर उस प्रसादको किसी वृक्षके नीचे रख देते। भजनमें विक्षेप होनेके भयसे अपने हाथसे किसी को कभी न देते।

उनकी कुटियामें प्रकाश कम ही प्रवेश करता। दिन में भी अंधेरा-सा रहता। उसमें पृथक-पृथक रजके पात्रों में विभिन्न महात्माओंका अधरामृत और चरणामृत रहता, जिसका वे नित्य सेवन करते।

वे न धातु स्पर्श करते, न व्रजके बाहरकी कोई वस्तु। किसी विषयी व्यक्तिका संग या उसकी दी हुई किसी वस्तुका व्यवहार करनेका तो कोई प्रश्न ही न था। उनका अन्तःकरण इतना शुद्ध था कि जिस प्रकार उजले वस्त्रपर हल्का-सा भी दाग दीख जाता है, उसी प्रकार किसी विषयी व्यक्ति या उसकी किसी वस्तुका दूरका भी अनजाने उनसे संग हो जाता, तो उन्हें तुरन्त भासने लगता।

वे जन सम्पर्कसे दूर रहनेके लिए रातमें गोवर्धन-परिक्रमा करते। एक बार रातमें परिक्रमा करते-करते

सबेरा हो गया और वे कुटिया तक न पहुँच पाये। रास्तेमें सोचने लगे कि एक बड़ा मन्दिर बनवाते और उसमें वैष्णव-सेवाकी सुन्दर व्यवस्था कराते तो कितना अच्छा होता। इस प्रकारकी मनोवृत्ति मनमें उदय होते ही वे उसका कारण खोजने लगे। पीछे मुड़कर देखा तो एक सेठजी उनके पीछे-पीछे आ रहे थे। वे समझ गये कि उनके मनमें जो विचार आये थे वह उनके संगसे उत्पन्न हुई संगजनित-मनोवृत्तिके कारण थे।

एक दिन उन्होंने स्वप्न देखा कि एक मनुष्यने एक दूसरे मनुष्यके शरीरको सारी खाल उधेड़ दी है। अन्वेषण करनेपर पता चला कि उसके पूर्व दिन उन्होंने जो एक ब्रजवासी पुजारीकी दी हुई मधुकरी खायी थी, वह उसने एक क्षेत्रसे लाकर उन्हें दी थी। क्षेत्र इलाहाबादके एक डाक्टर द्वारा चलाया जा रहा था। उसका अन्न खानेसे जो अन्न जनित मनोवृत्ति उत्पन्न हुई थी, वही उनके स्वप्नका कारण थी।

हरिदास बाबा सदा भावोन्मत्त रहते थे और उसी दृष्टिसे जगत्को देखते थे। एक दिन ज्येष्ठ मासमें भरी दुपहरीमें कुटियासे निकलकर उत्तप्त गिरितटसे होते हुए कहीं दूर शौचको गये। अद्वैतदास बाबाने उन्हें जाते देखा। दो घंटे बीत गये, फिर भी उन्हें लौटा न देख वे उनकी खोजमें निकले। थोड़ी दूर जाकर देखा कि वे धूपमें शान्त और निस्पन्द अवस्थामें खड़े हैं। उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं ओर बीच-बीचमें शरीर

कम्पायमान हो रहा है। अद्वैतदास बाबाजीने जान लिया कि वे किसी भावमें डूबे हैं। इसलिए उनके निकट न जाकर वे अपनी कुटियाको लौट गये। जब बाबा लौटे तो उन्होंने पूछा—"बाबा, आज शौचमें इतनी देर क्यों लगी ?"

उन्होंने कहा—"क्या बताऊँ ? इतने दिनोंसे गिरिराज ने अपने चरणोंमें आश्रय दे रखा है, पर आज तक किसी गधेका-सा भी भाव नहीं दिया। चलो तुम्हें दिखाऊँ, तो तुम समझोगे।"

वे अद्वैतदास बाबाजीको उसी स्थानपर ले गये जहां उन्होंने उन्हें भाव-मुद्रामें खड़े देखा था। एक गढ़ेकी ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा—"यह देखो।" फिर बोले–"देखा ? क्या देखा ?"

"यही कि एक गधा कीचड़में लोट रहा है" अद्वैतदास बाबाजीने कहा।

हरिदासजीने प्रेमावेशमें एक थप्पड़ मारनेका-सा उद्यम कर उनके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—"बस यही ? !"

तब वे समझ गये कि वे क्या कहना चाह रहे हैं—"श्रीराधाकृष्णकी चरण धूलि समझ गधा प्रेमावेशमें रज में लोट-पोट हो रहा है !"

हरिदासजी कुछ दिन ऐरावत कुण्डके दाहिनी ओर वनखण्डीमें रहे थे। एक दिन संध्या समय जब वे जतीपुरा

से मधुकरी कर लौट रहे थे, रास्तेके ठीक बगलमें एक बाघ बैठा था। वे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द' इत्यादि नाम करते-करते भावमग्न अवस्थामें चले जा रहे थे। उसी अवस्थामें नाम करते-करते बाघके सामनेसे निकल आये। फिर भी उसकी ओर लक्ष्य नहीं किया। मानो बाघ भी नाम-ध्वनि सुन अविष्ट जैसा चुपचाप बैठा रहा। जब वे कुछ आगे निकल आये, उन्हें ध्यान आया कि पथमें कोई जानवर बैठा था। उन्होंने सुन रखा था कि वहाँ बाघ रहता है। इसलिये उन्हें फिरकर देखनेका कौतुहल हुआ। उन्होंने उलटकर देखा तो सचमुच बाघ बैठा था। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वे उसके मुँहके सामनेसे चले आये और वह जड़वत् बैठा रहा।

गोविन्दकुण्डमें रहते समय एक पच्चीस वर्षका व्रजवासी ब्राह्मण उनकी शरणमें आया और उनसे गुरु-दीक्षा देनेका आग्रह किया। वे व्रजवासी मात्रमें गुरु-बुद्धि रखते थे। तो इस ब्राह्मणको दीक्षा कैसे देते? उन्होंने विनयपूर्वक अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। फिर भी ब्राह्मण उनकी एकान्त शरणमें पड़ा रहा। अन्तमें उन्होंने उसे गुरु-सेवा बुद्धिसे उपदेश देकर दीक्षा और वेश प्रदान किया। नाम रखा श्रीहरेकृष्णदास। पर उन्होंने किसी दिन हरेकृष्णदासकी सेवा स्वीकार नहीं की।

हरेकृष्णदासजीसे गुरुदेबके अप्रकट होनेके पश्चात् उनका विरह सहन न हुआ। उन्होंने भी उनके आसनके

निकट आसन जमाकर साल भरतक एकान्त भावसे भजन करते हुए उनका अनुगमन किया। गुरु-शिष्य दोनोंकी समाधियाँ जतीपुरामें ऐरावत कुण्डके पश्चिममें हरजी कुण्डके तोरपर विद्यमान हैं।

श्रीरामानन्द बाबाजी

(वृन्दावन)

श्रीहट्ट जिलेके श्रीरामानन्ददास बाबाजी 'बाम कौपीना' सम्प्रदायमें दीक्षित थे। वे कुमार अवस्थासे ही वैरागी थे। चारों धामोंकी पैदल यात्रा करते हुए वृन्दावन आ गये थे। वृन्दावनमें उन्हें पता चला कि बाम कौपीना सम्प्रदाय एक उपसम्प्रदाय है। तबसे वे कौपीनकी गाँठ दाहिनी ओर बाँधने लगे।

निधुवनमें कई वर्ष तक भजन करनेके पश्चात् वे राधाकुण्ड चले गये। बड़े प्रेमी और सरल हृदयके व्यक्ति थे वे। श्रवण-कीर्तनमें उनका भावोद्गार और रोना-धोना देख लोग चमत्कृत रह जाते थे। राजर्षि वनमालीराय

उनसे बहुत प्रभावित थे। वे उन्हें अपने साथ वृन्दावन ले गये। वहाँ वे उनके साथ उनके विनोद-बाग में रहकर भजन करने लगे।

राजर्षि बहादुर और उनकी पत्नीके देहावसानके पश्चात् उनके ठाकुर श्रीविनोदजीकी सेवाकी देख-भाल वे ही करते। एकदिन उनका शरीर थोड़ा अस्वस्थ हुआ। उन्होंने कामिनीबाबू और श्रीमाधवदास बाबाको बुलवा भेजा। इधर वे अपना नित्य कृत्य सदाकी भाँति करते रहे। उसके पश्चात् श्रीमद्भागवत-पाठ सुना। रात्रिमें वृन्दावनके कीर्तनियाँ श्रीरामदास बाबाजीसे 'रूपाभिसार' कीर्तन सुना। कीर्तनियोंको भोजन करा और दक्षिणा दे विदा किया। तब श्रीमाधवदासजी, कामिनीबाबू और विपिनबिहारीदासने नाम-कीर्तन प्रारम्भ किया। भाद्र मास था। रात्रि १२ बजे ठंड पड़ने लग गयी थी। इसलिये इन लोगोंने बाबाको भीतर ले चलनेको कहा। उत्तरमें उन्होंने कामिनीबाबूकी ओर देखा और थोड़ा हँसकर मुख ढक लिया। कामिनीबाबू उनकी हँसीका अर्थ तब समझे जब दो घंटे बाद उन्होंने उनका मुख खोलकर देखा। वे नित्य-लोलामें प्रवेश कर चुके थे!

श्रीरामदास बाबाजी

(बरसाना/लोटनकुञ्ज)

श्रीरामदास बाबाजी श्रीअभिरामगोपालकी परम्परा में दीक्षित हो सख्यरसकी उपासनामें संलग्न थे। व्रज-मण्डलमें आनेके पाश्चात् सिद्ध श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजके संग और उनकी कृपासे श्रीरूपानुग-भजनमें प्रवृत हुए। बरसानेमें रहकर भजन करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें उनके भजनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। उनकी सेवाका कुछ भी अवसर प्राप्त कर लोग अपनेको धन्य मानने लगे। वे खुले आकाशके नीचे भजन करते थे, यह देख ताड़ासकी रानीने उनके लिये भानुकुण्डके तट पर एक कुटिया बनवा दी। वे उसमें रहकर भजन करने लगे।

कुटियापर दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगने लगी। पंडोंमें चरचा चल पड़ी कि बाबाके पास बहुत धन है। इससे बाबाके भजनमें विघ्न पड़ने लगा। तब वे लोटनकुञ्जमें डाक्टर विपिनविहारीदास द्वारा बनवाई कुटियामें चले गये और अंततक वहीं रहकर भजन करते रहे।

बाबा जातर्रात साधक थे। श्रीकृष्णकी उनपर विशेष कृपा थी। वे अपनी डायरी लिखा करते थे। डायरीमें एक जगह लिखा था—

"स्वयं महाभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमुखसे मुझसे कहा—सुदुर्जय परम शत्रु मन देहमें वास करता है। उसे चौबीस घण्टे झाड़ू मारकर अपने बशमें रखना, नहीं तो वह तुम्हारा भजन-साधन नष्टकर तुम्हें रौरव नरकमें ले जायेगा। सब प्रकारसे मनको निग्रह कर ताड़ना भर्त्सना द्वारा लीलामें नियुक्त रखना। जब वह असत् पथपर जाने लगे श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुको एकाग्रचित्तसे पुकारना।"

संभवत: तभीसे वे मनको निग्रह करनेके लिये अपने तकियेके नीचे एक छुरी रखते थे। एक बार "गौड़ीय-वैष्णव-जीवन" के सुप्रसिद्ध लेखक, प्रात:स्मरणीय श्रीहरिदासदास बाबाजी महाराजने छुरी देखकर उनसे उसका रहस्य पूछा था। तब उन्होंने कहा था—"यह बदमाश मनको वशमें रखनेके लिए है। जिस दिन यह श्रीमन्महाप्रभु द्वारा निर्दिष्ट भजन-पथसे मुझे विच्युत करेगा, या उसमें शिथिलता उत्पन्न करनेकी चेष्टा करेगा, उसी दिन इस छुरीसे अपना गला काटकर उसकी अन्त्येष्टि कर दूँगा।"

इस सम्बन्धमें वे कितना दृढ़ प्रतिज्ञ थे, इसका भी उनकी डायरीसे पता चलता है। उसमें श्रीहरिदासदासजी ने यह लिखा देखा था—

"यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कोई भी हो, मुझे अकारण जूता मारे, मेरे मुखमें पेशाब करे, शरीरपर

विष्ठा डाले, सिरपर विषसे भरी लाठीसे प्रहार करे, काँटों द्वारा शरीर बिद्ध करे, गाली भरी दुरुक्तियों द्वारा मेरे मनको वेदना पहुंचाये या मेरा मस्तक छेदन करे, तो भी मैं न शस्त्र चलाऊँगा, न वाक्य-बाण। आज बंगाब्द १३३८, माघ मासकी अष्टमी तिथिको २ बजे मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की। यदि मैं इस दृढ़ प्रतिज्ञाको भंग करूँ, तो २७८६० युगों तक नरक भोगूँ। भगवान् श्रीकृष्ण मेरी इस प्रतिज्ञाके साक्षी रहें। जब भी इस प्रतिज्ञाको भंग करनेकी इच्छा होगी, इस छुरीसे अपना गला काट लूँगा।"

उनकी इस प्रतिज्ञाका श्रीहरिदासदासजीने "गौड़ीय-वैष्णव-जीवन" में उल्लेख किया है। एक और प्रतिज्ञा जिसका उन्होंने उनकी डायरीसे उल्लेख किया है, इस प्रकार है—

"व्रजकी स्त्रियोंके प्रति लक्ष्मीके समान और पुरुषोंके प्रति विष्णुके समान भक्ति करनी है। अतएव हे मन! सावधान! सावधान! सावधान! स्त्री हो या पुरुष, सबके समक्ष गल-वस्त्र दे हाथ जोड़कर रहना है। यह नियम जीवन-पर्यन्त पालन करना है। यह प्रतिज्ञा-पत्र बंगाब्द १३४७, भाद्र मासकी १७ तारीखको १२ बजे लिखा।"

श्रीरामदास बाबाने इन दोनों प्रतिज्ञाओंका सारा जीवन अक्षरशः पालन किया।

श्रीव्रजकिशोरदास बाबाजी

(भातरोल/सिन्दुरक)

श्रीव्रजकिशोरदास बाबाजी सिद्ध श्रीनित्यानन्ददास बाबाके अनेकों शिष्योंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। दैन्य, वैराग्य और भक्तिमें वे सिद्ध बाबाकी ही प्रतिमूर्ति थे। वे किसी कुटीमें कभी नहीं रहे। भातरोल ग्राममें एक घर 'भूतोंका घर' के नामसे प्रसिद्ध था। उसीमें अधिक रहे।

एक बार उस घरमें रहनेवाले भूतोंमेंसे एक उनका तेज देख बहुत भयभीत हुआ। उन्हें देख उस जीवके भयभीत होनेसे उन्हें अपराध होगा, इस विचारसे उन्होंने वह घर छोड़ दिया, और एक प्राचीन पुलके नीचे जाकर रहने लगे, जो सिन्दुरक ग्रामके निकट वृन्दावनसे सिन्दुरक जानेके मार्गपर था। उनका अवशिष्ट जीवन वहीं व्यतीत हुआ।

कोई उन्हें देखकर दण्डवत् न करे, इस उद्देश्यसे वे अलक्षित भावसे रहते। वे अपनेको दीन, हीन और अस्पृश्य जान किसी मंदिरके भीतर जाकर ठाकुरके दर्शन न करते, जिससे किसीको उनका स्पर्श हो जानेका अपराध उनसे न बने।

एक करुआ और एक गुदड़ीमें ही उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया।

उन्हें सारा गोविन्द लीलामृत कंठ था। इससे लगता है कि वे अष्टकालीन लीला-स्मरण किया करते थे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके वंशज शृंगारवटके श्रीप्रेमानन्द प्रभुने उन्हींसे भजन-शिक्षा ग्रहण की थी।

श्रीहरिचरणदास बाबाजी

(वृन्दावन/कुसुम सरोवर)

मुंगेर जामालपुरके श्रीमहेन्द्रनाथ भट्टाचार्य नामक एक नवयुवक विरक्त वेश धारणकर भजन करनेके उद्देश्यसे वृन्दावन पधारे। वे परम सुन्दर ब्राह्मण-संतान थे और छोटी उम्रके थे। उन्हें कोई भी वेश देनेको तैयार न हुआ। इसलिए उन्होंने स्वयं जमुना-स्नानकर वेश परिवर्तन कर लिया। श्रीगौरकिशोर शिरोमणि महाशयके पास जाकर उन्होंने दीक्षाके लिए प्रार्थना की। उन्होंने अपने-आप वेश-परिवर्तन कर लिया था, इसलिए शिरोमणि महाशयने स्वयं दीक्षा न देकर अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरासवल्लभ भक्तिभूषण द्वारा उन्हें दीक्षा दिलवा दी और नाम रखा श्रीहरि-चरणदास।

हरिचरणदासजीने पंडित श्रीरामकृष्णदास बाबाजीसे शास्त्राध्ययन किया और गौरकिशोर शिरोमणि महाशयसे भजन-शिक्षा ग्रहण की। शिरोमणि महाशय

के नित्यधाम पधारनेके पश्चात् वे कुछ दिन राधाकुण्डमें रहे। फिर कुसुम-सरोवरपर एक छतरीमें रहकर भजन करने लगे।

उस समय श्रीरामकृष्ण पंडित बाबाजी श्यामकुटीमें भजन करते थे। उनके पास ग्वालियर महाराजके सौतेले-भाई श्रीबलवन्तराव भइया साहब आये भजन-शिक्षा लेने। पंडित बाबाने ऐसे व्यक्तिको भजन-शिक्षा देनेके लिए हरिचरणदासजीको योग्य जान उनके पास भेज दिया। भइया साहब उनके निकट रहकर भजन-शिक्षा ग्रहण करने लगे। उनके आदेशसे उन्होंने कुसुमसरोवर के निकट एक मन्दिर और बगीचेका निर्माण किया और उसमें श्रीराधाकान्तजीकी सेवा तथा वैष्णव-सेवा की व्यवस्था की। दूर-दूरके गाँवोंमें भजन करनेवाले विरक्त महात्माओंके लिए मासिक वृत्तिका प्रबन्ध किया। इस व्यवस्थाको स्थायी रूप देनेके लिए 'राधाकान्त फंड' नामसे गवर्मेन्टमें बहुत-सा धन जमा किया और एक कार्यकारी समितिका गठन किया, जो आज भी यह सेवा सुचारु रूपसे चला रही है।

श्रीहरिचरणदास बाबा श्रीधाम पुरीके श्रीराधारमण चरणदास देव (बड़े बाबा) के समकालीन थे और उनके ब्रजवासके समय उनकी बहुत-सी अलौकिक लीलाओंके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे।

मुखिया श्रीगोकुलदासजी (श्रीहर्षप्रियाजी)

(वृन्दावन)

मुखिया श्रीगोकुलदासजीका जन्म संवत् १९३५ में राजस्थानके महुआ ग्रामके एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ। रूप, गुण और भक्ति-भावमें वे साधारण बालकोंसे बिलकुल भिन्न थे। १८ वर्षकी अवस्थामें ही वे भरतपुरके लाला महाराजके मन्दिरके श्रीरेवतीशरणदास बाबासे दीक्षा ग्रहण कर उनकी सेवामें रहने लगे।

एकदिन एक रामलीला मण्डलीके स्वामीकी उनपर दृष्टि पड़ी। श्रीरेवतीशरणदास बाबाके पास जाकर वे बोले—"मेरी आपसे एक विनम्र प्रार्थना है। यदि आज्ञा हो तो कहूँ।"

"अवश्य कहिए" बाबाने उत्तर दिया। स्वामीने कहा—"आपके इस बालकको देख मुझे प्रेरणा हो रही है कि यदि यह मण्डलीमें रामका स्वरूप बना करे तो अच्छा हो। रूप, गुण, शील और स्वभावमें यह कितना कुछ रामके अनुरूप है। रामके स्वरूपमें इसे देख लोगों को लगेगा जैसे साक्षात् श्रीरामका ही लीलामें आविर्भाव हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि राम-लीलाके दर्शक भक्तोंका सुख-विधान करनेके हेतु आप इस बालकको कुछ दिनके लिए मुझे दे दें।"

बाबा कुछ असममंजसमें पड़ गये। थोड़ी देर बाद बोले—"इस बालकको थोड़े दिनके लिए भी आपको देनेमें मुझे जो कष्ट होगा उसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। पर यदि इसके द्वारा भक्त-समाजकी कुछ सेवा हो सकती है, तो आप इसे अवश्य ले जायँ।"

गोकुलदासजीको गुरुदेवकी आज्ञासे यह सेवा स्वीकार करनी पड़ी। थोड़े ही दिनोंके अभ्यासके पश्चात् वे रामजीका बड़ा सुन्दर अभिनय करने लगे। उनका अभिनय इतना स्वाभाविक और भाव-भक्तिसे भरा होता कि लोग उसे देख देह-गेहकी सुध भूल जाते। उसके कारण मण्डलोकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। कुछ विद्वेषी लोगोंको यह देख ईर्षा हुई। वे मण्डलीको नीचा दिखानेकी सोचने लगे।

एकदिन भरतपुरमें मण्डलीको धनुष-यज्ञकी लीला करनी थी। उसके लिए धूम-धामसे तैयारियाँ की गयीं। एक धनुष भी बनाया गया, जो आसानीसे टूट सकता था। विद्वेषी लोग भी बाहरसे उत्साह दिखाते हुए तैयारीमें जुटे थे। धनुष देखकर उन्होंने कहा—"यह धनुष ठीक नहीं है। इसे भली प्रकार स्वर्णिम गोटेसे सजाकर रखना चाहिए। हमें दीजिए हम इसे सजा लाएँ।"

स्वामीने कहा—"अब समय अधिक नहीं है। गोटा आदि लानेमें विलम्ब होगा। इसलिए ऐसे ही रहने दीजिये।"

"आप चिंता न करें। हम इसे झट सजाकर लीलाके पूर्व मंचपर रख देंगे"—इतना कह वे लोग धनुष ले गये। उन्होंने पहलेसे ही लोहेका धनुष बनवाकर उसपर गोटा लपेटकर और सुन्दर फूलोंसे उसे सजाकर रख छोड़ा था। उस धनुषको लीलाके समयपर मंचपर ले जाकर रख दिया।

लीला प्रारम्भ हुई। एक-एककर राजा आये और धनुषसे जूझकर परास्त होनेका अभिनय कर चले गये। जनकजी विषादभरी बाणीमें बोल पड़े—

"अब जिन कोउ माखै भट मानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज-निज गृह जाहू।
लिखा न विधि बैदेहि बिबाहू॥

—अब कोई वीरताका अभिमानी मेरी बातका बुरा न माने। मैंने जान लिया कि पृथ्वीमें कोई वीर नहीं रहा। सीताके विवाहकी आशासे आये देश-विदेशके राजाओं, तुम अब उसके विवाहकी आशा छोड़ अपने-अपने घर जाओ। विधिने सीताके भाग्यमें विवाह नहीं लिखा।"

तब विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको आज्ञा की—

उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

—राम! उठो, अब समय आ गया। शिवजीका धनुष तोड़कर जनकका संताप दूर करो।"

गुरुके वचन सुन मञ्चरूपी उदयाचलपर रामरूपी बालसूर्य उदय हुए। उन्हें देख सीताजीका हृदय-कमल

खिल गया। वे आकुल-व्याकुल भावसे मन ही मन शिव और दुर्गा मनाने लगीं! फिर गणेशजीसे प्रार्थना कर कहने लगीं—

"गन नायक वर दायक देवा।
आजु लगें कीन्हिउँ तुम सेवा॥
बार-बार विनती सुन मोरी।
करहु चाप गरुता अति थोरी॥

—हे वर देनेवाले देव श्रीगणेणजी। मैंने आज ही के लिए आपकी सेवा की थी। मैं बार-बार विनती करती हूँ कि धनुषकी गरुता बहुत कम कर दीचिए।"

उसी समय रामने एकबार सीताजीकी ओर देखा। फिर एकबार धनुषको ऐसे देख जैसे गरुड़ छोटे-से साँप को देखे, उसे फुर्तीसे उठा लिया।

तब विद्वेषी जन यह सोचकर प्रसन्न होने लगे कि अभी तक धनुषके बदले जानेके राजका किसीको पता नहीं चला है और रामकी और रामलीला-मण्डलीकी किर-किरी अब होने ही वाली है। राम अपनी सारी ताकत लगाकर हार जायेंगे, फिर भी धनुष नहीं टूटेगा। धनुष-यज्ञ असफल हो जायगा। पर—

"लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें।
काहुँ न लखा देख सब ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

धनुषको लेते, चढ़ाते और जोर-से खींचते किसी नें नहीं देखा। एक भयंकर ध्वनि हुई और रामने बीच से धनुष तोड़ दिया! दर्शकोंकी जय-जयकारसे आकाश गँज गया।"

विद्वेषी लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे और लज्जित हो उसी समय वहाँसे खिसक गये।

पीछे टूटे हुए धनुषको देख उनकी कारस्तानीका पता चल गया। सबको आश्चर्य हुआ कि गोकुलदाससे लोहे-का धनुष तिनकेकी तरह कैसे टूट गया। गोकुलदासको स्वयं भी इसका कुछ पता नहीं। उन्होंने तो साधारण बांसका बना जानकर उसे उठाया था और यही जान-कर बिना किसी परिश्रमके तोड़ डाला था। पर टूटे हुए धनुषको देख उन्हें यह समझनेमें देर न लगी कि धनुष उठाया उन्होंने, तोड़ा रामजीने!

प्रभुकी अपने ऊपर इतनी कृपा देख उनका मन उनके चरणोंमें रम गया। संसारसे पूर्ण विरक्ति हो गयी। उन्होंने सारा जीवन उन्हींका भजन और चितन करनेका निश्चय किया। इतने कृपालु प्रभुको पाकर फिर संसार का भजन और चिंतन क्या करना। गुरुदेवसे विरक्त वेश लेकर वे वृन्दावन चले गये ओर यमुनातटपर श्रीजीके बगीचेमें रहकर गीपाल-मन्त्रराजकी साधनामें लग गये।

समाज-गायनमें वे बड़े प्रसिद्ध हुए। उनके श्रीयुगल-शतक और श्रीमहावाणीके समाज-गायनसे प्रसन्न हो

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पाद पीठाधीश्वर श्रीबालकृष्ण-देवाचार्यजीने उन्हें बनखण्डी महादेवके पास स्थित छोटी कुञ्जकी सेवा प्रदान की। तबसे वे छोटी कुञ्जमें रहने लगे।

उन्होंने राधा-कृष्णके और हंस भगवान्से लेकर श्रीहरिव्यास देवाचार्य तकके आचार्योंके अनेकों बधाईके पदोंकी रचना की है। पदोंमें 'हर्षप्रिया' की छाप दी है।

वि० सम्वत् १९७५ श्रावण कृष्णा सप्तमीको उन्होंने श्यामा-श्यामकी नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

श्रीसाधु माँ

(वृन्दावन)

परम साध्वी, विदूषी, तेजोमयी और वैभवशालिनी साधु माँको सब 'साधुमाँ' ही कहते। उनका सिद्धेश्वरी देवी नाम तो कोई बिरला ही जानता, क्योंकि वे सभी प्रकारसे साधु-मात्रकी माँके समान ही थीं। वे उनको जागतिक और पारमार्थिक सभी प्रकारकी समस्याओंका हल करनमें सदा तत्पर रहतीं।

उनकी शंकाओंका समाधान करतीं, भजन-साधन सम्बन्धी उनकी गुत्थियाँ सुलझातीं, भाँति-भाँतिसे आश्वासन देकर उन्हें भजनमें उत्साहित करतीं, भोजन और वस्त्रादि देकर उनकी सांसारिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करतीं। वृन्दावनमें रंगजीके बचीचेके पीछे एक सुरम्य उद्यानमें उनका आश्रम वृन्दावनके साधुओंका मातृ-स्थान बना हुआ था। सभी सम्प्रदायोंके साधु वहाँ जाकर उनसे अपने भजन-साधनकी बात कहते और शांति लाभ करते। सख्य-भाव-सिद्ध संत श्रीग्वारिया बाबा तो अकसर उनके पास जाकर अपने 'यार' श्रीकृष्णकी शिकायत किया करते।

एकबार, जब माँके आश्रममें कथा हो रही थी, सभीने देखा कि ग्वारिया बाबा एक लम्बा चोगा और पगड़ी पहने, हाथमें डंडा और गेंद लिए सहसा भागते आये और बोले—"मइया री! यार पकड़बे आय रह्यौ है। मोएँ झिपाय लै।"

मइयाने कहा—"ऊपर कमरेमें जाकर छिप जाओ।" ग्वारिया बाबा कथाके गंभीर वातावरणको चीरते हुए ऊपर जाकर छिप गये। कथाके पश्चात् माँके पूछनेपर बोले—"मइया! बा दिन यार मेरो दाँव दिये बिना भज गयो। आज मैं हूं भज आयो गेंद लै के बिना दाँव दिये।"

माँने उन्हें माखन-मिसरी, खीरसा आदि खानेको दिया। खा-पीकर वे फिर कहींको रम गये।

साधु माँ का जन्म अद्वैताचार्य प्रभुके वंशज प्रभुपाद श्रीगोविन्दचन्द्र गोस्वामीजीकी कन्याके रूपमें शारदीय दुर्गाष्टमीकी पावन बेलामें हुआ। श्रीगोविन्दचन्द्रजीको उनके जन्मके पहले ही आभास हो गया था कि जो उनकी कन्यारूपमें आविर्भूत होने जा रही हैं, वे साधारण बालिका नहीं, साक्षात् योगमाया हैं।

बाल्यकालसे ही पिताजीसे दीक्षा लेकर वे ठाकुरसेवा, पूजा और हरिनाम-कीर्तन आदिमें निमग्न रहतीं। कभी-कभी स्वतः अलौकिक वार्तालाप करते सुनाई पड़तीं।

उन्होंने पिताजीसे शास्त्राध्ययन बड़े मनोयोगके साथ किया और षड्गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका विशेषरूपसे अनुशीलन कर वैष्णव-सिद्धान्तमें व्युत्पन्न हुईं। पिताजीके देहावसानके पश्चात् श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी परम्परामें वेश ग्रहण कर वे श्रीमन्महाप्रभुके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए तीर्थ-भ्रमणको निकल पड़ीं। उनकी उम्रकी महिलाके लिए यह एक साहसी कार्य था। पर उन्हें विश्वास था कि स्वयं महाप्रभु उनके साथ हैं और वे उनके आनुगत्यमें ही यात्रा कर रही हैं। इसलिए उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं था।

यात्राके बीच वे एकचक्रामें नित्यानन्दप्रभु और वक्रेश्वर महादेवके दर्शन करते हुए प्रसिद्ध तन्त्रपीठ तारापीठ पहुँचीं। वहाँ तारादेवी के दर्शन किये। उस समय

मन्दिर के प्रांगणमें प्रसिद्ध तन्त्र-सिद्ध महात्मा वामाखेपा विराजमान थे। माँको देख उन्होंने अनुभव किया कि साक्षात् योगमाया उन्हें दर्शन देने पधारी हैं। उन्होंने पुष्पाञ्जलि उनके चरणों में अर्पितकी और प्रणाम किया। माँने उन्है प्रतिप्रणाम किया। बहुत देरतक दोनोंमें गुप्त वार्तालाप हुआ। चलते समय माँने कहा—"मैं महाप्रभु और राधागोविन्दके लीला-समुद्रमें डूबी रहकर भजन करना चाहती हूँ। कृपाकर आदेश करें कौन-से स्थानपर रहकर करूँ।" महात्माने कुछ दिन बेलूरमें गंगातटपर और पीछे वृन्दावनमें रहकर भजन करनेका संकेत किया।

माँ बेलूर जाकर गंगातटपर एक निर्जन स्थलमें कठोर साधनामें लग गयीं। उनके अन्तरङ्ग परिकरोंमेंमें श्रीकिशोरानन्द ठाकुर उनकी परिचर्यामें रहने लगे।

कुछ दिन पश्चात् वे वृन्दावन जाकर बंसीवटके निकट बड़े कुञ्जमें रहने लगीं। धीरे-धीरे रंगजीके बगीचेके पास उनके विशाल आश्रमका निर्माण हुआ और उसमें एक सुन्दर मन्दिरमें श्रीश्रीराधा कुंजकिशोरजीके श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा हुई। उसी समय एक-के बाद एक बेलूर, भुवनेश्वर, पुरी और गोवर्द्धन आदि स्थानोंमें आश्रमों और मन्दिरोंका निर्माण हुआ। बेलूरमें श्रीप्रेमकिशोरजी, भुवनेश्वरमें श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी, श्रीसुभद्राजी और श्रीगोपालजी, गोवर्धनमें श्रीगिरधारीजी और पुरीमें चक्रतीर्थपर रसराज और महाभावके मिलित विग्रह

श्रीश्रीगौरकिशोरजी (प्रसिद्ध श्रीसोनार गौरांग) की प्रतिष्ठा हुई।

इन सभी मन्दिरोंमें 'हरिभक्ति विलास' के अनुसार बड़े लाड़-चाव और विधि-विधानसे ठाकुर-सेवा की जाती। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, राधाष्टमी और गौर-पूर्णिमापर विशेष उत्सव मनाये जाते और ठाकुरके विधिपूर्वक अभिषेकके पश्चात् हवनादि किये जाते। एकबार वृन्दावनमें कृष्ण-जन्माष्टमीके दिन उसी प्रकार उत्सव मनाया गया। संध्या-समय माँ मन्दिरके पीछे तुलसीके बगीचेके निकट बैठी जप कर रही थीं। उसी समय एक ब्रजयुवतीने उनके सम्मुख आकर कहा—"तुम मेरा शरीर क्यों दग्ध करती हो? वृन्दावनमें हवनका क्या प्रयोजन? यहाँ नाम-यज्ञसे ही सब यज्ञ हो जाते हैं।"

माँ भौंचक्की-सी उस परम सुन्दरी तेजोमयी ब्रज-युवतीकी ओर देखती रह गयीं। उसकी बात उनकी समझमें न आयी। उन्होंने पूछा—"तुम कौन हो माँ?"

"मैं रजरानी हूं" युवतीने उत्तर दिया और उसी समय अन्तर्धान हो गयी।

तब वे सब कुछ समझ गयीं। सेवकोंको बुलाकर उन्होंने आज्ञाकी—"वृन्दावनमें हवन कभी न करना।" तभीसे वृन्दावनमें उनके मन्दिरमें अभिषेकके पश्चात् हवनकी प्रथा बन्द कर दी गयी, यद्यपि अन्य स्थानोंमें उनके मन्दिरोंमें हवन आज भी किया जाता है।

माँके अनेक शिष्य हुए, जिनमें प्रधान थे श्रीरामानन्द दादा, जो श्रीरामपुरमें मैजिस्ट्रेट थे और जिन्होंने माँके

आश्रममें सन्त-सेवा और गौ-सेवाकी सुष्ठु व्यवस्था की, श्रीकृष्णानन्द ब्रह्मचारी और श्रीराम दादा, जिन्हें माँने वैष्णव शास्त्रोंमें पारदर्शी बनाया, श्रीअनन्तदासजी, जो उनके अन्तरंग सेवक थे और श्रीवीरा दीदी, जो उनके पंजाबी शिष्योंमें प्रधान थीं। वीरा दीदीने वृन्दावनमें उनके आश्रममें १०० वर्षसे भी अधिककी उम्रतक रहकर भजन किया।

माँके पंजाबी शिष्य बहुत थे। उनपर उनकी विशेष कृपा थी। उनके सम्बन्धमें वे अपने सेवकोंसे कहा करतीं–"इनके आचार-विचारपर ध्यान न देना। इनके सरल हृदय और भाव-भक्तिके कारण गौरकिशोर तथा राधा-कुंज किशोर सदा इनके हृदयमें विराजमान रहेंगे।"

रसराज श्रीकृष्ण और महाभावस्वरूपिणी श्रीराधाके मिलित स्वरूप श्रीगौरांगमहाप्रभुकी उपासिका होते हुए भी माँकी राधारानीमें अनन्य निष्ठा थी। महाप्रभुके सन्यासरूपके तो वे न दर्शन कर सकती थीं, न उनकी कथा सुन सकती थीं। एकबार बेलूरमें उनके आश्रममें एक भक्त निमाई-सन्यासका कीर्तन कर रहे थे। माँ जैसे ही अपने कक्षसे निकलीं कीर्तनियाँके यह शब्द उनके कानमें पड़े—

"नदिया छाड़िया गोरा सन्यांस करिला।"

उसी समय वे मूर्छित हो गयीं। बहुत देरतक उसी अवस्थामें पड़ी रहीं। जब मूर्छा भङ्ग हुई तो बोलीं—

"प्राण गौरकिशोरको मस्तक-मुँडित वेशमें मैं नहीं देख सकती। उस वेशका कीर्तन भी मैं नहीं सुन सकती।"

माँको रासलीला बहुत अच्छी लगती। उनके आश्रम में रासलीलाका आयोजन अकसर होता रहता। वे रास-लीला देखते-देखते भाव विभोर हो जातीं। इसलिए रासलीला वे आश्रमकी दूसरी मंजिलपर ऐसे स्थानपर बैठकर देखतीं, जहाँ उनपर किसीकी दृष्टि न पड़े। रासलीलाके स्वामी और स्वरूप कहा करते कि वहाँसे रासलीलाके दर्शन करते हुए वे उनमें कुछ ऐसी शक्तिका संचार करतीं, जिससे उन्हें लगता कि वे आविष्ट हो यन्त्रके समान लीला कर रहे हों।

संवत् २००० वैशाख, शुक्ला सप्तमीको माँने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

श्रीअमोलकरामजी शास्त्री

(वृन्दावन)

व्रजसे या संस्कृत वाङ्मय से जिस व्यक्तिका थोड़ा भी सम्बन्ध है, वह वृन्दावनके धुरंधर विद्वान्, भक्त श्रेष्ठ श्रीअमोलकरामजी शास्त्रीके नामसे अवश्य परिचित होगा। विक्रम संवत् १६२६, फाल्गुन कृष्णा द्वादशीको कुरुक्षेत्रके समीप पुण्डरीक नामक ग्राममें पं० शालिगरामजी उपाध्यायके घर उनका जन्म हुआ।

उनकी कुशाग्र बुद्धि और आध्यात्मिक विषयोंमें असाधारण रुचि देख पिताने उन्हें विद्याध्ययनके लिये काशी भेज दिया। काशीमें वे बड़े मनोयोगके साथ अध्ययन करने लगे। परीक्षाओंमें सदा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होकर उन्होंने विशेषरूपसे अध्यापकोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

यहाँ उन्हें सत्संगका भी अच्छा सुयोग मिला। गङ्गापार एक परम तपस्वी महात्मा रहते थे। उनका सत्संग करने वे नित्य जाया करते। उनके सत्सङ्गसे उन्हें संसारसे पूर्ण वैराग्य हो गया। संसार त्यागकर हिमालयकी किसी कन्दरामें तपस्या करनेका उन्होंने निश्चय किया। पर महात्माने निषेध किया। उन्होंने कहा—"तुम हिमालय जाकर तपस्या करनेकी मत सोचो। गृहस्थमें रहकर केवल अध्ययन और अध्यापन करो। यह भी एक तपस्या हैं। मेरा

आशीर्वाद है कि इसीके फलस्वरूप तुन्हें भगवान्के दर्शन होंगे।"

महात्माकी आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने तपस्याका विचार छोड़ दिया। पर उन्हें प्रेरणा हुई व्रजमें जाकर अध्ययन-अध्यापन और भजन करने की। वे वृन्दावन चले गये। वहाँ सस्कृत पाठशालामें पढ़ते रहे और स्वामी हरिदासजीकी परम्पराके प्रसिद्ध संत श्रीस्वामिनीशरणजी से दीक्षा लेकर भजन करते रहे।

उन्होने व्याकरणाचार्य तथा वेदान्ताचार्यकी परीक्षाएँ पास कीं। उसके पश्चात् न्याय आदि पढ़नेके लिए वे नवद्वीप गये। वहाँ न्याय-रत्न, तर्क-तीर्थ आदि उपाधियाँ ग्रहण कीं। इतनेपर भी उनका अध्ययन और उपाधियाँ प्राप्त करनेका सिलसिला समाप्त न हुआ। 'उभय-वेदान्ताचार्य', 'विद्यावागीश', "द्वैताद्वैत-मार्तण्ड" 'सर्व-शास्त्र निष्णात' आदि उपाधियां भी एक-एक कर उनके नामके आगे जुड़ती गयीं।

अध्ययन समाप्त होनेपर रतलाममें सस्कृत विद्यालयके प्रधान अध्यापकके रूपमें उनकी नियुक्ति हुई। पर रतलाममें वे रहते केवल शरीरसे ही। उनका मन पड़ा रहता वृन्दावनमें। मनका तनसे विच्छेद कबतक चल सकता था? वे बराबर राधारानीसे प्रार्थना करते रहे उन्हें वृन्दावन ले चलनेकी। आखिर राधारानीने उनकी सुन ली। वृन्दावनमें श्रीरङ्ग-पाठशालामें उनकी नियुक्ति हो गयी। कुछ दिन वहाँ अध्यापन करते रहे। फिर

श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरके निकट एक पाठशालामें प्रधान अध्यापकके पदपर नियुक्त हुए।

अध्यापनके साथ-साथ उनकी एकान्त साधना भी चलती रही। वे कालीदहके निकट एक एकान्त स्थानमें रहने लगे। उन्हें जमुनाजीसे बड़ा अनुराग था। वे नित्य जमुना-स्नानको जाते। ११ बजेतक जमुनातटपर ध्यानमें बैठे रहते। कभी-कभी वहाँ बैठे-बैठे संध्या हो जाती और उन्हें पता भी न चलता।

इस बीच उनके पांडित्यकी ख्याति दूर-दूरतक फैल चुकी थी। काशी विश्वविद्यालयके संचालकतो ऐसे विद्वानोंकी खोजमें रहते ही थे। उन्होंने अमोलकरामजी से भी अनुरोध किया विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागमें एक विशिष्ट पद सम्हाल लेने का। उस समय उन्हें वृन्दावनमें केवल ५०) मासिक वेतन मिलता था। यदि वे काशी विश्वविद्यालयका पद स्वीकार कर लेते, तो उनकी आर्थिक स्थिति तो अच्छी हो ही जाती, उनकी ख्याति भी और अधिक बढ़ जाती। पर वे तो गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी वृन्दावनेश्वरी और वृन्दा-वनाधीशके प्रेममें सब कुछ त्याग चुके थे। व्रजधामको छोड़ कहीं अन्यत्र जानेका उनके लिए प्रश्न ही नहीं था। उन्हें न धनका लोभ व्रज छोड़नेको बाध्य कर सकता था, न सम्मान और प्रतिष्ठाका। उन्होंने उस पदको अस्वी-कार कर दिया।

उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीस्वामिनीशरणजीकी बहुत सेवा की। उनकी सेवाके उद्देश्यसे वे बरसाने अकसर जाया करते। एकबार गुरुदेव बहुत अस्वस्थ हो गये। उन्होंने वृन्दावन जाना चाहा। पर उनकी कुटिया बरसाने की पहाड़ीपर थी और नीचे उतरनेकी शक्ति उनमें थी नहीं। अमोलकरामजीने उन्हें कंधेपर बैठाकर नीचे ले चलनेका प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा—"मेरे विशाल शरीरको तू वहन नहीं कर सकेगा।" सभी जानते थे कि अमोलकरामजी जैसे किसी व्यक्तिके लिए यह कार्य कितना दुष्कर था। पर उन्हें नीचे लाना आवश्यक जान अमोलकरामजीने आवेशमें कहा—"आपकी कृपासे अवश्य आपको ले जा सकूँगा।" गुरुकृपासे वे उन्हें वहनकर नीचे लानेमें समर्थ हुए। उस समय उन्हें एक बिचित्र अनुभव हुआ। उन्हें लगा कि गुरुदेवका शरीर कितना हलका और गुलाबके फूलकी तरह सुगन्धमय है।

गुरुदेवकी कृपासे उन्है बरसानेमें श्रीजी और उनकी सखियोंका और वृन्दावनमें जुगलका साक्षात्कार हुआ।

अमोलकरामजीको पं० रामकृष्णदास बाबाजी महाराजका संग बहुत प्रिय था। वे भी उनसे बहुत स्नेह करते थे।

सम्वत् २००१ पौष शुक्ला १० को उन्हें निकुञ्ज प्राप्ति हुई। उन्होंने बहुत-से ग्रन्थोंकी रचना की, जिनकी सूची इस प्रकार है—

१. परपक्ष गिरि-वज्र

२. वेदान्त-कौस्तुभ प्रभा
३. आत्म-परमात्म-तत्वादर्श
४. वेदान्त रत्नमाला
५. वेदान्त तत्वबोध
६. आचार्य-स्तवमाला
७. अष्टादश सिद्धान्त पदोंकी टीका
८. छान्दोग्य-उपनिषद-भाष्य
९. वेदान्त-रत्न-मंजूषा
१०. अष्टादश उपनिषद्-भाष्य

श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामी प्रभुपाद

(श्रृंगारवट, वृन्दावन)

आज कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा है और श्रीगौरांग महाप्रभुके वृन्दावन आगमनकी शुभ तिथि। इसके उपलक्ष्यमें पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति आज भी कलकत्ता-पाठवाड़ीके सिद्ध श्रीरामदास बाबाजी महाराज और उनके अनेकों भक्त वृन्दावन पधारे हैं। वे गोपीनाथ बाजार-स्थित श्रीगौरांग महाप्रभु मन्दिरके विशाल श्रीविग्रह और गोस्वामीगणके साथ कीर्तन करते हुए वृन्दावन परिक्रमा

को निकले हैं। वृन्दावनके असंख्य नर-नारी, जो साल-भरसे इस अवसरकी बाट देखते रहे हैं, उनका मधुमय कीर्तन सुननेके लिए उनके साथ हैं। रामदास बाबाजी महाराज अपूर्व नृत्यभंगीमें कृष्णप्रेमोन्मादमें, कृष्णको बन-बन ढूँढ़ती विरहिणी राधाके भावमें भावित श्रीमन्महाप्रभुके आनुगत्यमें खोल-करतालकी ध्वनिके बीच कीर्तन करते जा रहे हैं—

व्रज बने विरहिणी आमादेर (हमारे) प्राण गोरा राय।
वियोगिनी, उन्मादिनी, आमादेर प्राण गोरा राय॥
कृष्ण-प्रेम-पागलिनी आमादेर प्राण गोरा राय।
आमादेर, आमादेर, आमादेर प्राण गोरा राय॥

वे जब महाप्रभुकी ओर निहारते, वक्षपर हाथ रख ठुमुक, ठुमुककर नृत्य करते गाने लगते हैं—"आमादेर, आमादेर, आमादेर प्राण गोरा राय," उनके मुख और वक्ष गर्वसे फूल उठते हैं, नेत्रोंसे आसुओंकी धार बहने लगती है और शरीर प्रचंड वायुके झोंकेसे झकझोरे गये केलेके वृक्षके समान कम्पित होने लगता है। बीच-बीचमें वे ऐसी हुंकार कर उठते हैं, जिससे दिशाएँ गूँज जाती हैं और भक्तोंके मन-प्राण एक अनिर्वचनीय भाव-समुद्रमें गोते खाने लगते हैं।

बाबाजी महाराज अपने हृदयमें तत्काल स्फूर्त पदोंको गाते जा रहे हैं। भक्तगण उन्हें दोहराते जा रहे हैं। अनेकों दोनों बाहु ऊपर उठाकर नृत्य करते जा रहे हैं।

एक अपार जन-समूह मानों भाव-भक्तिकी बाढ़में बहा चला जा रहा है !

बाबाजी महाराजसे कुछ दूर लोग देवकीनन्दन प्रभु-पादको मूर्छित अवस्थामें अपने कंधोंपर लिए चले आ रहे हैं। मूर्छित होते हुए भी उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे हैं, मुखसे लार बह रही है और शरीर खोलकी प्रत्येक ताल के साथ जैसे उछल-उछलकर नृत्य करता-सा लग रहा है। जो लोग उन्हें अपने कंधोंपर लिए हैं, उन्हें उनको पकड़े रखना मुश्किल लग रहा है। उन्हें लग रहा है कि जैसे उनके शरीरकी प्रत्येक धमनी 'हरिबोल' की ध्वनिके साथ नृत्य करती चल रही है।

प्रभूपादके लिए यह कोई नयी बात नहीं। उन्हें इस प्रकारकी प्रेम-मूर्छाकी दशामें अनेकों बार पहले भी देखा गया है। शृङ्गारवटके निताइ-गौरकी शोभा-यात्रा में भी उनकी अकसर इस प्रकारकी दशा होती देखी गयी है।

एकबार प्रभुपाद अपने एक सेवकके घर कलकत्ते गये। रात्रिमें कीर्तन हुआ तो आप उठकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते 'हा निताइ !' कह पछाड़ खाकर गिर पड़े। बेसुध अवस्थामें रातभर पड़े रहे। एक युवकको शंका हुई कि उनकी मूर्छा बनावटी है। उसने गुप्त रूपसे शरीरमें कई जगह सुई चुभोकर उनकी परीक्षा की। सुइयोंका कोई असर होते न देख वह लज्जित हो घर चला गया। रात्रिमें उसके माता-पिता

को स्वप्न हुआ। नित्यानन्द प्रभुने रोषमें भरकर उनसे कहा—"तुम्हारे लड़केने मेरी प्रिय सन्तानको सूइयोंसे गोदा है। प्रातः होते ही उस महत् अपराधका प्रायश्चित करो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।"

सबेरा होते ही माता-पिता लड़केको साथ ले प्रभुपाद के पास गये। लड़केने उनके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते उनसे कहा—"मैं मूर्ख हूँ। मूर्खतावश मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। कृपाकर मुझे क्षमा करें।"

प्रभुपादने कहा—"कैसी क्षमा? तुमने मेरा कौन-सा अनिष्ठ किया है?"

लड़केको और कुछ कहनेका साहस न हुआ। उसके पिताने जब उनसे सब बात खोलकर कही, तो वे बोले—"मुझे किसीने सुई नहीं चुभोई। तुम्हारे ऊपर निताइ चाँदने इस छलसे कृपा की है। तुम धन्य हो।"

भाव-भक्तिके मूर्त-स्वरूप श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामी प्रभुपादका जन्म नित्यानन्द प्रभुकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें श्रीयशोदानन्दन गोस्वामी प्रभुके पुत्ररूपमें हुआ था। पढ़े-लिखे वे साधारण ही थे। पर ढाई अक्षर प्रेमके जैसे वे जन्मसे ही पढ़कर आये थे। नाम-जप और ठाकुर-सेवामें उनकी शुरुसे ही विशेष रुचि थी। पुजारीके रहते हुए भी शृङ्गारवटके निताइ-गौरकी प्रातःकालीन सेवा-पूजा-शृङ्गार आदि वे स्वयं करते थे। उनका बाकी समय

घरके बाहर बैठकखानेमें हरिनाम-जपमें व्यतीत होता था। घरके किसी कामसे जैसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। घरका और जमींदारीका काम उनके भाई श्रीरोहिणीनन्दन और श्रीजानकीनन्दन देखा करते थे।

निताइ-गौरकी वे आत्मवत्-सेवा किया करते। गर्मीके दिनोंमें उनके अंगमें पसीना देख दुःखी हुआ करते और घंटों उन्हें पखा किया करते, जब कि और किसीको उनके अङ्गमें कहीं पसीना न दीखता।

एक बार जब वे ठाकुर-सेवा कर रहे थे, श्रीरामदास बाबाजी महाराज भक्तों सहित कीर्तन करते हुए मंदिरके प्राँगणमें पधारे। वे न जाने कौन-सा गीत गा रहे थे। उसे सुनते ही प्रभुपाद मन्दिरके ऊँचे जगमोहनसे प्रांगणमें कूद पड़े और प्रेमावेशमें रामदास बाबाजी महाराजसे जा लिपटे। बहुत देरतक उन्हें अपने बाहुपाशमें जकड़े हुए अश्रु विसर्जन करते रहे। बिचारे रामदास बाबाजी महाराज पुत्तलिकावत् उनके प्रेमपाशमें जकड़े खड़े रहे। दूसरे लोगोंने बहुत चेष्टा की, फिर भी उन्हें छुड़ा न सके। बाबाके इंगितपर जब उन्होंने कोई और कीर्तन प्रारम्भ किया, तब वे उन्हें छोड़ दोनों भुजाएँ उठाकर आनन्दसे नृत्य करने लगे।

एकादशीके दिन देवकीनन्दन प्रभु पंडित रामकृष्णदास बाबाजी महाराजकी कुटियापर अवश्य जाया करते। दोनोंमें प्रेमालाप और इष्ट-गोष्ठी हुआ करती। एकदिन किसी प्रसंगमें देवकीनन्दन प्रभुने कहा—"बाबा, जीवन

समाप्त होनेको आया, पर अभीतक प्रभुने कृपा नहीं की। न जाने मेरा क्या होगा।"

बाबाने कहा—"गोसाईंजी, आप ऐसे कहेंगे, तो मेरा क्या होगा? आपने तो पहले ही प्रभुको अपने प्रेमके वश कर रखा है। वे आपके आगे-पीछे डोला करते हैं।"

उसी दिन जब प्रभूपाद घर लौट रहे थे, उन्होंने देखा कि सनातन गोस्वामीकी समाधिके पीछे सूखे नालेमें श्यामवर्णका एक सुन्दर गोप-बालक गैया दुह रहा है। गैयाकी पीछेकी टाँगें एक सुन्दर जेवरीसे बँधी हैं, आगे की एक टाँगसे उसका नवजात बछड़ा बँधा है। गैया बछड़ेको चाट रही है और गोपबालक गोदोहनकी चारु-चेष्टामें उसके थनोंपर उँगलिया फेर रहा है। बालकमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि प्रभुपाद ठिठककर उसे देखने लगे। उन्हें देख बालक बोला—"गोसाईं कहा देख रह्यौ है? तोये देख कैं गैया लात दैगी, दूध पलट जायगो।"

प्रभुपाद आगे बढ़ लिए। पर बालककी मधुर छबि उनके हृदयमें बस चूकी थी। दो ही कदम आगे जाकर उन्होंने उसे फिर देखनेके लिए गर्दन मोड़ी, तो वहाँ न कोई बालक था, न गैया!

प्रभुपादके बहुतसे शिष्य हुए। वे अपने शिष्योंसे दो बातें विशेष रूपसे कहा करते। एक तो निरन्तर नाम-जप करनेकी और दूसरी पंडित रामकृष्णदास बाबा और श्रीगौरांगदास बाबाजीका यथासम्भव संग करनेकी।

सन् १९५४ आषाढ़, कृष्णपक्ष तृतीयाको उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया।

भक्तिमती श्रीललिताबाईजी

(वृन्दावन)

भक्तिमती ललिताबाईका जन्म सन् १८७४ के लगभग आगरेके भार्गव जातिके एक भक्त परिवारमें हुआ। इस परिवारके लोग बाल्यकालसे ही रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षित होते आये थे। इसलिए ललिताबाईको भी बाल्य-कालमें ही इस सम्प्रदायमें श्रीरामानुजदासजी महाराजसे दीक्षित करा दिया गया। १० वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह कर दिया गया। १२ वर्षकी अवस्थामें वे विधवा हो गयीं।

भक्तिके संस्कार तो उनमें पहलेसे थे ही, वैधव्यके पश्चात् उनका मन संसार से एकदम हटकर प्रभुके भव-तापहारी, अनन्तकोटि चन्द्रमाओंके समान सुशीतल चरणारविन्दसे जा लगा। वे हर समय एकान्तमें उन्ही का चिंतन करतीं, उन्हींका प्रेमाश्रूओंसे प्रच्छालन करतीं

और उन्हींका भाव-पुष्पोंसे पूजन करतीं। घरके लोगोंका संग भी उतना ही करतीं,जितना नितान्त आवश्यक होता।

माता-पिताको लगा कि उनकी लाड़ली वैधव्यके दु:खके कारण ऐसी हो गयी है। उन्होंने उसे उसकी बुआके पास वृन्दावन ले जानेका विचार किया, जिससे उसका मन कुछ बदल जाय। बूआजी वहुत दिनोंसे वृन्दावनवास कर रही थीं और रंगजीके मन्दिरके पीछे अपने गुरु-स्थान हरदेवजीके मन्दिरमें रह रही थीं।

ललिताबाईसे उसकी माँने कहा—"तुझे तीजपर बरसाने ले चलेंगे। वहाँ श्रीजीके झूलेका दर्शन करेंगे। फिर कुछ दिन बुआजीके पास वृन्दावनमें रहेंगे।"

ललिता यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। पर तीजको अभी पूरा महीना बाकी था। वह एक-एक दिन गिनने लगी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये उसकी श्रीजीके झूलेके दर्शनकी लालसा बढ़ती गयी। दुर्भाग्यसे तीजके कुछ ही दिन पूर्व उसके छोटे भाईको म्यादी बुखार हो गया। उसकी हालत तेजीसे बिगड़ने लगी। माता-पिताको बरसानेकी यात्राका विचार छोड़ देना पड़ा।

तीजका दिन आ गया। उस दिन भाईकी अवस्था बहुत चिंताजनक थी। घरके लोग भाग-दौड़में लगे थे। डाक्टर और वैद्य बार-बार आ-जा रहे थे। ललिता ऊपर एक कमरेमें अकेली पड़ी रो रही थी। श्रीजीके दर्शनका उसका स्वप्न बिखर जानेके कारण

उसका दुःख असह्य हो रहा था। वह मना रही थी कि झूलनके समयके पूर्व ही शरीरके पिंजड़ेमें आबद्ध उसके प्राण-पखेरू उड़कर किसी प्रकार बरसाने पहुंच जायें।

धीरे-धीरे संध्या आ गयी। बरसानेमें श्रीजीके झूले-पर विराजनेकी घड़ी भी आ गयी। ललिताके प्राण-पखेरू पिंजड़ेसे निकल भागनेको बुरी तरह छटपटाने लगे। छटपटाते-छटपटाते बेसुध हो गये। उसी समय उसके विषादकी कालिमाँको चीरता हुआ उसके सामने कौंध गया बिजलीका-सा एक दिव्य प्रकाश। उसने देखा अपने आपको बरसानेमें श्रीजीके झूलनके दर्शन करते हुए। श्रीजीने अपनी मधुर मुस्कान से उसके हृदयमें एक अपूर्व आलोड़न उत्पन्न करते हुए उसे निकट आनेका संकेत दिया। फिर हस्तकमल मस्तकपर रख कहा—"कर लिये झूलेके दर्शन ?" साथ ही अगल-बगल झूलेकी रस्सी पकड़े खड़ी दोनों सखियोंने प्रेमार्द्र नेत्रोंसे उसकी ओर देखा। बस इतनेमें उसकी बाह्य चेतना जाग गयी और सब कुछ अदृश्य हो गया।

नीचे भाईकी दशामें भी आशातीत परिवर्तन हुआ। धीरे-धीरे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

श्रीजीके दर्शन देकर अदृश्य हो जानेके पश्चात् ललिताकी विरह-वेदना और तीव्र हो गयी। वह बरसाने जाकर श्रीजीकी सेवामें रहनेका आग्रह करने लगी। पर इतनी छोटी अवस्थामें माता-पिता उसके आग्रहको कैसे

स्वीकार कर लेते ? उन्होंने किसी प्रकार उसे बुआजीके पास वृन्दावनमें रहकर भजन करनेको राजी कर लिया।

ललिताबाई १२ वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन चली गयीं और बुआजीके संरक्षणमें रहकर भजन करने लगीं। बुआजीके धाम पधारनेके पश्चात् प्रौढ़ावस्थामें वे बरसाने गयीं। १८ वर्षतक वहाँ अखण्ड वासकर श्रीजीको फूल-श्रृङ्गार-सेवा करती रहीं। वे दूर-दूर जाकर जहाँ-तहाँसे फूल चुनकर लातीं और श्रीजीके लिए फूलोंके आभूषण तैयार करतीं। एकबार फूल चुननेमें देर हो गयी। आभूषण समयसे तैयार न हो सके। वे मन्दिरके बाहर बैठी श्रृङ्गार बना रही थीं, उसी समय एक सखी उनके निकट आकर बोली—"बहुत देर हो रही है। अभी तक लाड़िलीका श्रृङ्गार नहीं बना ?" और जो श्रृङ्गार बन पाया था उसकी डलिया उठाकर ले गयी। ललिताबाई भौंचक्की-सी उसकी रूप-माधुरी और दिव्य वेश-भूषा देखती रह गयीं। वह दो-चार कदम आगे जाकर अदृश्य हो गयी।

ललिताजी शुक सम्प्रदायके रसिक संत श्रीसरस-माधुरीजीसे बहुत प्रभावित थीं। वे उनके प्रति गुरु भाव रखती थीं और उनकी बताई रीतिके अनुसार ही सखी-भावसे चिंतन करती थीं। जयपुरमें उनके द्वारा आयोजित श्रीशुकदेवजी महाराज और शुक सम्प्रदायके आचार्य श्रीचरणदासजी महाराज आदिके उत्सवोंमें सम्मिलित हुआ करती थीं।

ललितमाधुरीके नामसे वे पद-रचना भी करती थी। उनका एक बधाईका पद,जो उन्होंने श्रीसरस-माधुरीजीके जन्म-दिवसपर लिखा था, इस प्रकार है—

आज बधाईको दिन नीको।
प्रगटी सरस माधुरी सुख-निधि सब रसिकनको टीको।
स्वयं स्वरूप श्याम श्यामाको लीनो जन्म अलीको।
मंगल साज सजे सब अलिगन भयो भाँवतोजी को।
जगके जीव उधारन कारन मेट्यो दोस कलीको।
रंग महलमें बटत बधाई नृत्य होत युवतीको।
'ललितमाधुरी' तन-मन बारी भयो मनोरथ हियको।

श्रीसरसमाधुरीजीके माध्यमसे ही मुसलमान भक्त अजमेरके श्रीसनम साहबसे उनका सम्पर्क हुआ। उनके यहाँ भी राधाष्टमीके उत्सवपर वे अकसर जाया करतीं। एकवार जब उनकी आयु लगभग ७०वर्षकी थी, वे अजमेर से कुछ भक्तोंके साथ श्रीनाथद्वारे गयी। वे और उनके साथी मन्दिर पहुँचे चार बजेके लगभग, जब मंदिरके पट बन्द थे। सब बाहर दालानमें बैठकर पट खुलनेकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय ललिताजीको आठ-दस बालकोंके साथ दालानमें धमाचौकड़ी मचाते नील और गौर वर्णके दो अति सुन्दर बालकोंके दर्शन हुए और वे मूर्छित हो गयीं।

कुछ देर बाद जब चेतना आयी मन्दिरके पट खुल चुके थे। भीतर जाकर उन्होंने श्रीनाथजीके दर्शन किये। वे दर्शन कर रही थीं उसी समय एक बालकने पोछेसे

आकर उनके कंधेपर हाथ रखते हुए कहा—"देख, मैं कितना सुन्दर हूँ !" उन्होंने गर्दन मोड़ी, तो देखा कि वही नील वर्णका सुन्दर बालक, जिसे उन्होंने थोड़ी देर पहले बालकोंके साथ उछल-कूद करते देखा था, उनके पीछे खड़ा मुस्करा रहा है। वह सचमुच बहुत सुन्दर था ! उसे देख जैसे ही ललिताजीने हाथ बढ़ाया उसे पकड़नेको, वह अंतर्धान हो गया। ललिताजी फिर मूर्छित हो गयीं।

राधा-कृष्ण और उनक परिकरोंकी इस प्रकारकी लुका-छिपी ललिताजीके साथ और बहुत दिनोंतक होती रही। चौरासी वर्षकी अवस्थामें इसका अन्त हुआ जब वे अपना पार्थिव शरीर वृन्दावनकी रजमें छोड़कर नित्य-निकुञ्जमें उनकी नित्य-सेवामें चली गयीं।

पं० श्रीश्यामसुन्दरजी

(नन्दग्राम)

नन्दग्रामके श्रीराधारमणजीके पुत्र पं० श्यामसुन्दरजी का जन्म सन् १८९५ के लगभग नन्दग्राममें हुआ। स्वामी अमृतानन्द सरस्वतीजीसे विद्याध्ययन कर वे स्वयं व्रजके पंडितोंके मुकुटमणिस्वरूप नन्दग्राममें बहुत दिन विराजमान रहे। श्रीमद्भागवतके भी वे बड़े मर्मज्ञ थे। स्वामी करपात्रीजी, श्रीउड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीकृष्णबोध आश्रमजी और श्रीअच्युतमुनि आदि जैसे विशिष्ट महात्मा भी श्रीमद्भागवत श्रवण करने उनके पास आया करते थे।

वे माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके श्रीश्यामानन्द परिवारमें श्रीगोकुलचन्द्र गोस्वामीसे दीक्षित थे। इतने बड़े विद्वान होते हुए भी वे बहुत ही सरल और भोले-भाले गरीब व्रजवासी ब्राह्मण थे।

अपने भोलेपनमें ही वे अपने प्रारम्भिक जीवनमें एक सन्यासीके प्रभावमें आ गये थे। उसकी बताई उपासना-के द्वारा उन्होंने ऐसी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि वे बिना प्रश्न किये उत्तर दे सकते थे, दूर देशकी और भविष्यकी बातें बता सकते थे।

एकदिन उनके गुरुभाई श्रीहीरानन्दजीने उन्हें साव-धान करते हुए कहा—"यह सिद्धि तुम्हारी उपासनामें

बाधक होगी।" उसी समय ललिताकुण्डके एक महात्मा ने उन्हें श्रीमद्भागवतकी आराधना करनेकी प्रेरणा दी। उन्होंने सिद्धिको तिलाञ्जलि दे श्रीमद्भागवतकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे नित्य भागवत पाठ करने लगे।

तब एक दिन स्वप्नमें एक देवीने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—"मैं कर्णपिशाचिनी हूँ। तुम भागवत छोड़ दो, तो मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगी।"

उन्होंने झट उत्तर दिया—"मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं, पर भागवत नहीं छोड़ सकता।"

उसी दिनसे उन्होंने सिद्धि विसर्जन कर दी। यदि वे ऐसा न करते तो सचमुच मालामाल हो जाते। देश-विदेशमें उनका नाम हो जाता और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और राजा-महाराजा उनकी टहल करते। पर उन्होंने तो श्रीमद्भागवतकी आराधना करनेका निश्चय कर लिया था। शास्त्र कहते हैं कि जिस क्षण कोई सुकृती पुरुष भागवतका अनुशीलन करनेकी इच्छा भर करता है, उसी क्षण भगवान् उसके हृदयमें आकर बन्दी हो जाते हैं—

श्रीमद्भागवते महा मुनिकृते किं वा परैरीश्वरः।
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(भा० १-१-२)

इसलिए उनके हृदयमें भगवान् बन्दी हो चुके थे। जिसके हृदयमें भगवान् विराजते हों, उसके हृदयमें

सांसारिक सुख-भोग और मान-सम्मानकी कामनाके लिए स्थान कहाँ ?

उन्होंने प्राप्त की हुई सिद्धिको तृणवत् त्यागकर सारा जीवन निर्धन और संसारकी आँखोंसे ओझल रहकर नन्द-ग्रामके नीरव वातावरणमें निर्विघ्न भजनशील जीवन व्यतीत करना ही उपादेय समझा। वे नित्य ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर नाम-जप करते, स्नानादिके पश्चात् आह्निक और श्रीमद्भागवतका पाठ करते। मध्याह्नमें भोजन कर बैठकमें चले जाते और नाम-जप करते रहते। अपराह्नमें विद्यार्थियोंको भागवत पढ़ाते। रात्रिमें फिर नाम-जप करते-करते सो जाते।

उन्होंने सारा जीवन भागवत, भगवान् और भगवन्नाम को छोड़ और किसी वस्तुसे न तो लगाव रखा, न उसकी चाहना की।

सन् १९६८ में कार्तिक मासमें वे कुछ अस्वस्थ हुए। दीवालीके दिन ऐसा लगा कि अब उनका शरीर नहीं रहेगा। पर उन्होंने घरवालोंसे कहा–"चिंता मत करो। मैं आज नहीं जाऊँगा। तुम लोग दीवाली और अन्नकूट यथावत् मनाओ।" पंचमीको उन्होंने पूछा—"गोपाष्टमी कब है ?"

उन्हें बताया गया गोपाष्टमी किस दिन है। तब वे बोले—"मैं दूसरे दिन नवमीको चला जाऊँगा।" जैसे अपने जानेका दिन उन्हें अपनी इच्छानुसार ही स्थिर

करना रहा हो । थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—"मेंरी अस्थी व्रजके बाहर मत विसर्जन करना ।"

अपने निश्चयके अनुसार गोपाष्टमीके अगले दिन नवमीको वे नित्य-धामको चले गये। उनकी अस्थियाँ नन्द-सरोवरमें विसर्जित कर दी गयीं ।

भक्त ज्योतिरामजी

(मांट ग्राम)

तरुण ज्योतिरामजी घरसे निकल पड़े घरबार छोड़ गुरुदेवके सान्निध्यमें रहकर भजन करनेका मनमें दृढ़ संकल्प लेकर बिना किसीको खबर किये। वे मथुरा जक्शन स्टेशन पहुँचे और चुपचाप गाड़ीके उस डिब्बेमें बैठ गये, जिसमें गुरुदेव, कलकत्ता पाठवाड़ीके श्रीरामदास बाबाजी महाराज, शिष्यमण्डली सहित कलकत्ता जा रहे थे। गाड़ी जबतक चली नहीं उनके प्राण धुक-धुक करते रहे—कहीं कोई जाना-पहचाना व्यक्ति देख न ले ।

कलकत्ता पहुँचकर उन्होंने ठंडी सांस ली। उन्हें

लगा कि जन्म-जन्मान्तरसे संसारका जो बोझ वे सिरपर लिये फिर रहें थे, वह अब सिरसे उतर गया। अब वे गुरुदेवके चरण-कमलोंकी छायामें सुखकी नींद सो सकेंगे। उनके सान्निध्यमें ससारकी विघ्न-बाधाओंसे दूर रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक भजन कर सकेंगे। उनका पाषाड़को भी पिघला देनेवाला मन-प्राण मत्त कर देनेवाला कीर्तन सुन-सुन देव-दुर्लभ प्रेम-सम्पत्तिको सहजही प्राप्त कर सकेंगे।

पर उनकी दो-एक दिन खोज करनेके बाद उनके घरके लोगोंको समझनेमें देर न लगी कि वे गुरुदेवके साथ कलकत्ता चले गये हैं। वे भी कलकत्ता जा पहुँचे। बाबाजी महाराजसे रो-रोकर प्रार्थना की उन्हें घर वापस भेज देनेकी। परमकरुण बाबाजी महाराजसे उनका रोना न देखा गया। उन्होंने ज्योतिरामजीको घर लौट जानेकी आज्ञा दे दी। बिदा करते समय उनसे कहा—"भजन-साधनकी चिंता न करना। जितना हो सके करना। गौर विश्वम्भर!"

ज्योतिरामजी घर लौट गये। पर फिरसे संसारका बोझ सिरपर लेकर नहीं। लेकर एक नयी शक्ति, एक नयी प्रेरणा, एक नया विश्वास। बिदाईके समयके गुरु-देवके शब्दोंने उनके प्राणोंमें एक नया मन्त्र फूँक दिया था—'गौर विश्वम्भर"। श्रीगौरांग महाप्रभु ही हैं विश्वम्भर। वे ही करते हैं विश्वका भरण पोषण। केवल आर्थिक भरण-पोषण ही नहीं, पारमार्थिक भी। इसलिए

मनुष्य भजन-साधनकी भी चिंता क्यों करे। जिस स्थिति में वह है, उसमें जितना बने भजन करता रहे। बाकी सब कुछ गौर विश्वम्भर करेंगे, ऐसा जानकर निश्चिंत रहे। फिर बोझ कैसा ? बोझ ढोनेवाले तो विश्वम्भर हैं। उसे मनुष्य जबरदस्ती अपने सिरपर क्यों ले ?

यदि उसे यह दृढ़ विश्वास है कि उसका भरण-पोषण विश्वम्भर करते है, वे कभी उसके लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्नकर कभी प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्नकर विविध प्रकारसे उसके आत्माका पोषण करते हैं और उसे उस प्रेम-सम्पत्तिको ग्रहण करनेके योग्य बनाते हैं, जिसके द्वारा विश्वको भर देनेके उनके संकल्पके कारण उनका नाम 'विश्वम्भर' है; यदि वह इस प्रकार उनपर निर्भर रहकर संसारमें विचरण करता है, तो उसका जीवन ही भजन है, तो वह जो कुछ भी करता है, चाहे वह कोई साँसारिक कार्य ही क्यों न हो, वह उसके भजनका एक अंग है।

ज्योतिरामजीका सारा जीवन इसी साँचेमें ढला था। वे एक साधारण गृहस्थ होते हुए भी महान थे। सन् १८९८ में मथुरा और रायाके बीच बिजईका नगला ग्राममें बाबू बालमुकुन्द अग्रवालके घर उनका जन्म हुआ। सन् १९२० के लगभग उन्होंने मुख्तारी पास की। कुछ दिन मथुराके अग्रवाल विद्यालयमें अध्यापन करनेके पश्चात् मथुरा जिलेकी माँट तहसीलमें मुख्तारी करने लगे। सत्संग प्रेमी वे प्रारम्भसे ही थे। पं० रामकृष्ण-दास और श्रीजगदीशदास जैसे सिद्ध महात्माओंका संग

उन्होंने बहुत किया। उन्हींके आदेशसे उन्होंने आत्म-समर्पण किया श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजके चरणोंमें। श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजने उन्हें दीक्षित करवाया अपने गुरुदेव, कलकत्ता पाठवाड़ी आश्रमके श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे। १९२५ में श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे दीक्षित होनेके पश्चात् उनका वैराग्य इतना बढ़ गया कि उन्हें घर प्रतीत होने लगा जलरहित अंधे कुएँकी तरह, बन्धु-बान्धव रिपुकी तरह, आहार प्रहारकी तरह और संसार एक असहनीय बोझकी तरह।

इस बोझको सिरसे उतार फेंकनेके लिए ही उन्होंने कलकत्तेकी यात्रा की थी। पर गुरुदेवने उन्हें लौटा दिया था एक मन्त्र देकर, जिससे बोझ सिरपर रहते हुए भी नहीं रहने जैसा लगने लगा था। अब वे संसारमें रहते हुए भी उससे मुक्त थे, विषयोंका उपयोग करते हुए भी उनमें अनासक्त थे, गृहस्थमें रहते हुए भी परम विरक्त थे।

वैसे देखा जाय तो उनका बोझ कुछ कम न था। पाँच लड़के और तीन लड़कियों तथा छोटे भाई और उनके बच्चोंके भरण-पोषण, उनकी पढ़ाई-लिखाई और उनके विवाह आदिका भार उनके अकेलेके लिए सम्हालना कठिन था। यह नहीं कि उनकी मुख्तारीकी आमदनी कुछ कम थी। पर उनकी आमदनीका बड़ा भाग साधु-वैष्णवोंकी सेवामें चला जाता था। साधु-वैष्णवोंकी

सेवाके लिए उनका हाथ इतना खुला था कि वे कर्ज लेकर भी उनकी सेवा करनेमें नहीं सकुचाते थे। परिणामस्वरूप उनपर कर्ज सदा बना रहा। अपने जीवनके अन्तिम समय ही वे सारा कर्ज चुका पाये थे। फिर भो उन्हें चिताग्रस्त कभो किसीने नहीं देखा। उदासी उन्हें छूकर भी नहीं गयी। वे न स्वयं उदास रहते, न किसीको उदास देख सकते। उनका लड़का मोहन बहुत बीमार रहता। उसे जब वे उदास देखते तो कहते—"मोहन, 'गौर-हरि' बोलके नांच तो।"

अपने पुत्र व्रजगोपालको उन्होंने एक बार लिखा था—"सदा प्रसन्न रहो। चिता किसो बातकी न करो। देख रहे हो कि कर्ता तुम नही हो और जो हैं वे कितने दयालु हैं। कठिनाईके समय भी उनकी कृपाका अनुभव करो। समझ लो कि दयामय प्रभु उसके माध्यमसे भी तुम्हारे ऊपर कुछ कृपा ही कर रहे हैं, जिसे अपनी सीमित बुद्धिके कारण तुम नहीं समझ पा रहे हो। बस तुम अपना कर्त्तव्य पालन करते रहो। परिणाम उनके ऊपर छोड़ दो। सुखी जीवनका यही रहस्य है।"

यदि ज्योतिरामजी चाहते तो मुख्तारीमें धन पर्याप्त कमा सकते थे। पर मुख्तारी उनका मुख्य कार्य तो था नही। मुख्य तो था भजन। वे बेफिक्रीसे भजन-साधन पूराकर देरसे कचहरी जाते। अकसर ऐसा होता कि हाकिम कुरसीपर बैठ जाता और मुवक्किल दौड़ते-हाँफते उन्हें बुलाने आते। पर यदि उनका भजन पूरा न हुआ

होता, तो कह देते—"हाकिमसे कहना हमारा वकील अभी बड़े हाकिमके सामने पेश है। वहाँका काम निबटा कर आयेगा।" हाकिम भी उनका सम्मान करते और उनकी बातका बुरा न मानते। कचहरीसे लौटकर वे फिर भजन-साधनमें लग जाते। मुवक्किलोंको समय बहुत कम दे पाते। थोड़े समयमें ही कचहरीमें जो मिल जाता उससे संतुष्ट रहते। कोई पूछता—"आज क्या कमाया ?", तो कहते—"यह मत पूछो क्या कमाया, पूछो क्या पाया ?" उनका विश्वास था कि प्रभु जितना आवश्यक समझते हैं, उतना दे देते हैं। फिर चिंता किस बातको ?

उनकी एक कीर्तन-मंडली थी, जिसे लेकर वे संध्या समय कीर्तनमें व्यस्त रहते। कीर्तनमें स्वयं नृत्य करते और दूसरोंको कराते। उस समय उनमें अष्टसात्विक भाव-प्रकट होते। माँट ग्राममें भक्ति-भगीरथीकी पावन धारा प्रवाहित करनेवाले वे भक्त-भगीरथ थे। उनके प्रभावसे माँटके बहुत-से लोग श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराजसे दीक्षा लेकर भजन-साधनमें जुट गये थे।

श्रीरामदास बाबाजी महाराजसे दीक्षित होते हुए भी ज्योतिरामजी श्रीगौरांदास बाबाजी महाराजका सत्संग अधिक करते और उन्हींके आनुगत्यमें भजन करते। अकसर कई-कई दिनतक वे उनके साथ व्रजकी वन-वीथियोंमें विचरते रहते और उन्हें मधुकरीमें प्राप्त रोटियोंके रूखे-सूखे टूक खाकर उनके सान्निध्यमें भजन

करते। श्रीगौरांगदास बाबाजी भी उनसे बड़ा स्नेह करते। माँटमें उनके घर जाकर कई-कई दिनतक रह आते। जब उन्हें देखे बहुत दिन हो जाते, तो कहते—"ज्योति बिन आँखि अन्ध।"

गुरु-पूर्णिमापर ज्योतिरामजी पहले रामदास बाबाजी महाराजके चित्रपटका पूजन करते, फिर गौरांगदास बाबाजीका पूजन करते। श्रीगौरांगदास बाबाका पूजन करते समय लोगोंको इस बातका आभास मिलता कि उनसे उनका सम्बन्ध किस स्तरका था। वे एक बार अश्रु और कम्प सहित उनकी ओर देखते। फिर दण्डवत् करनेके बहाने अश्रुओं का अर्घ उनके चरणोंमें गिरा देते। बाबाके नेत्र भी उस समय सजल हो जाते।

ज्योतिरामजीने श्रीगौरांगदास बाबाजीसे क्या प्राप्त किया यह तो वे जाने। उन्होंने कभी कसीको बताकर नहीं दिया। पर एकबार श्रीगौरांगदास बाबाजीने लेखक से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था—"ज्योति बड़ा अनुभवी है।" सांसारिक किसी अनुभवका तो बाबाके सामने कोई महत्व था नहीं। स्पष्ट है कि उनका संकेत उस अतीन्द्रिय अनुभवसे था, जिसे प्राप्तकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

ज्योतिरामजीको श्रीगौरांगदास बाबा और श्रीरामदास बाबाकी तो पूर्ण कृपा प्राप्त थी ही, अपने परम गुरुदेव श्रीराधारमणचरणदास देव (श्रीधामपुरीके 'बड़े बाबा') की भी पूर्ण कृपा प्राप्त थी। यद्यपि वे बहुत

दिन पूर्व अपनी लौकिक लीला समाप्तकर अंतरर्धान हो चुके थे, कभी-कभी वे बड़े विचित्र ढगसे उनके घर परोक्षरूपमें अपनी अवस्थितिका परिचय देते थे। एक बार श्रीगौरांगदासबाबा माँटमें उनके घर तख्तपर बठे थे। यकायक तख्त हिला। उन्होंने समझा भूचाल आया। पर कुछ दिन बाद जब वे नवद्वीप गये, उनकी भेंट हुई बड़े बाबाकी एक शिष्यासे जो 'पगली' नामसे प्रसिद्ध थी। उसे कभी-कभी बड़े बाबाका आवेश हुआ करता था। उस समय वह आवेशमें थी। यह देख श्रीगौरांगदास बाबाने बड़े बाबाको लक्ष्य कर कहा—"आपने तो मुझे भुला दिया।"

पगलीने उत्तर दिया—"मैं क्या तुझे कभी भुला सकता हूँ ? याद नहीं, उस दिन माँटमें ज्योतिके घर मैंने तेरा तख्त हिलाया था।"

ज्योतिरामजी अपनेको बहुत गुप्त रखते। पर यदि कभी अनायास किसीके भविष्यके संबंधमें उनके मुखसे कुछ निकल जाता, तो वह सत्य होकर रहता। यदि कभी किसीका कोई कष्ट उनसे न देखा जाता, तो वे एक शीशीमेंसे श्रीरामदास बाबाजी और श्रीगौरांगदास बाबाजीका मिला हुआ चरणामृत दे देते और उसका कष्ट दूर हो जाता।

दो बातोंसे पता चलता है कि उनका आत्मा कितना शुद्ध था और उनकी मानसिक स्थिति किस स्तरकी थी ! एकबार उन्होंने अपनीं लड़कीसे कहा था—

"लाली, मुझे सब कुछ साफ दीख जाता है, वैसे ही जैसे दर्पणमें चीजें साफ दीख जाती हैं।"

कई बार उन्हें हाई टेम्परेचर हुआ और बेहोशी आ गयी। ऐसी स्थितिमें साधारणतः लोग क्या कुछ अनर्गल बकने लगते हैं। पर उनके मुखसे वैष्णव-पद-पदावलियों और नाम-कीर्तनके सिवा और कुछ नहीं सुना गया।

उन्होंने अपने अन्त समयका संकेत पहले ही यह कह कर दे दिया था कि "मैं पूर्णिमाको श्रीधाम वृन्दावन जाऊँगा।" वृन्दावन तो वे बीच-बीचमें जाया ही करते। लोगोंने समझा कि वे पूर्णिमाको वृन्दावनमें रमणरेतीमें अपने गुरु-स्थान जानेकी बात कह रहे हैं। पर पूर्णिमाको वे चल दिये नित्य-धाम वृन्दावन। जाते समय भी उन्हें हाई टेम्परेचर था और बेहोशी। पर उनके ओष्ठ हिल रहे थे और उनके हाथ भी लयके साथ ऊपर-नीचे हो रहे थे। उनसे एकबार श्रीगौरांदास बाबाजीने कहा था—"मैं अन्त समय तेरे पास रहूँगा।" कदाचित् वे आ गये थे और ज्योतिरामजी उनके साथ कीर्तन करते हुए श्रीधाम वृन्दावन पधार रहे थे। वह १३ अक्टूबर १९७० का दिन था और समय था पूर्णिमाकी रात्रि जब पूर्ण चन्द्र आकाशमें उदित हो श्रीकृष्णके रास-विलासकी सूचना दे रहा था।

श्रीनित्यानन्ददास बाबाजी

(नन्दगाँव)

श्रीनित्यानन्ददास बाबाका जन्म आजसे लगभग १०० वर्ष पूर्व उड़ीसामें उड़िया महाभारतके लेखक, राजा श्रीकृष्णसिंहके वंशज, धराकोटके राजाके घर हुआ। उनके जन्मते ही स्थिर हो गया कि वे पारिकुदके राजाकी गोद जायेंगे और कालान्तरमें वहाँका राजपाट सम्हालेंगे।

पर उनके ऊपर केवल पारिकुदके राजाकी ही दृष्टि न थी, राजाओंके राजा महाराजाधिराज श्रीकृष्णकी भी उनपर पूर्ण दृष्टि थी। वे उन्हें इस लोकका कोई क्षण-भंगुर राज्य नहीं, परलोककी सैन्य-सामग्री और उसका कोई विशेष कार्यभार सोंपकर जन-जनके हृदयमें उनका एकक्षत्र राज्य स्थापित करनेको उत्सुक थे। उनकी योजना के आगे क्या इस लोकके किसी राजा-महाराजाकी योजना टिक सकती थी? जिसके ऊपर उनकी दृष्टि हो उसे क्या इस संसारकी कोई वस्तु उनके दृष्टिपथसे खींच कर अपने निकट ले आनेकी सामर्थ्य रखती है? वह प्रभु द्वारा निर्दिष्ट पथको छोड़ संसारकी भूलभुलैयाँमें फँसा ही कबतक रह सकता है?

एकदिन धराकोटके एक स्कूलके दसवें दरजेके अध्यापक किसी पदका अर्थ समझाते हुए कह रहे थे—"पुष्पराज कमलका जन्म कीचड़से होता है। पर जन्मसे ही वह

न कीचड़की ओर देखता है,न अपने चारों ओर और किसी वस्तुको। वह संसारसे आँख मींचकर रहता है और प्रतीक्षा करता रहता है अपने नेत्रोंके एकमात्र विषय सूर्य-देवके उदय होने की। उनके उदय होते ही वह नेत्र खोलता है और उनके छिप जानेपर वन्द कर लेता है। इसी प्रकार मनुष्योंमें जो श्रेष्ठ हैं, वे संसारकी ओरसे आँख मींचकर रहते हैं और एकमात्र श्रीभगवान्के दर्शन, चिंतन और उनकी लीला-कथाओंके श्रवण-कीर्तनमें संलग्न रहकर अपने जीवनको सार्थक करते हैं।"

कक्षाके सभी विद्यार्थियोंने यह बात सुनी। पर किसी के हृदयको इसने वैसा स्पर्श नहीं किया जैसा उस बालक को, जिसे नित्यानन्ददास बाबाके रूपमें प्रभुको अपने किसी विशेष कार्यका दायित्व सौंपना था। वह उसी क्षण संसारसे मुँह मोड़कर चल पड़ा परमार्थके उस पथपर, जिसपर पदार्पण करते हो प्रभु स्वयं उसके आगे-पीछे रह कर उसका मार्ग प्रशस्त करते हैं और उसे अपने बाहुपाश में भर लेनेको व्याकुल रहते हैं।

वह पहले आलालनाथ गया। वहाँ उस शिलाके दर्शन किये, जो महाप्रभुके ठाकुरको साष्टांग दण्डवत् करते समय उनके शरीरके स्पर्शसे पिघल गयी थी और जिसपर उनके सर्वाङ्ग-चिह्न आज भी देखकर भक्त प्रेमाविष्ट हो जाते हैं। उसके दर्शन करते ही उसे प्रेम-मूर्च्छा आ गयी।

आलालनाथसे जगन्नाथपुरी और जगन्नाथपुरीसे नव-द्वीप होते हुए वह वृन्दावन पहुँचा। उसने महाप्रभुके

पार्षद श्रीगदाधर पण्डितके परिवारके श्रीमधुसूदन गोस्वामीसे दीक्षा और श्रीगोपालगुरुकी परम्पराके श्रीश्यामचरण बाबाजीसे वेश लिया।

कौमार वयसके श्रीनित्यानन्ददास बाबा कौपीन, कंथा से सुसज्जित हो रजका करुआ हाथमें ले भजन करनेके उद्देश्यसे व्रजके गाँवोंकी तरफ चल पड़े। वे एक दिन एक गाँवमें रहते, दूसरे दिन दूसरे गाँवमें। उन्हें भय था कि कहीं उनके माता-पिता उनका पता-ठिकाना पाकर उन्हें घर लौटा लेजानेके लिए न आ जायें। इसलिए बहुत दिनों तक वे इसी प्रकार व्रजमें भ्रमण करते रहे। वे मधुकरी माँगकर खा लेते और वृक्षके तले सो लेते। जिह्वापर पूरा नियन्त्रण रखते। मधुकरीमें जो चुपड़ी मिलतीं उन्हें दूसरोंको दे देते। जो रूखी-सूखी मिलतीं उन्हें स्वयं खा लेते। सोते वे बहुत कम। निद्रा अधिक न आये इसलिए वृक्षसे पीठ टेककर बैठे-बैठे ही सोनेकी चेष्टा करते। कुछ ही दिनोंमें उन्होंने निद्राको इतना वशमें कर लिया कि केवल दो-तीन घण्टे सोकर ही काम चला लेते। उन्हें बैठे-बैठे सोते देख कभी कोई कहता—"बाबा, इस तरह आपकी टाँगें रह जायेंगी। टाँगें सीधी करके सोया कीजिए।" तब वे कहते—"मैं टाँग पसार कर सोने आया हूँ, या भजन करने?"

कभी-कभी जाड़ेमें रात्रिके समय भजन पूरा होनेसे पूर्व निद्रा घेरने लगती, तो वे गुदड़ी समेत कुण्डमें डूबकर निद्रासे दो-दो हाथ कर लेते और फिर भजनमें बैठ जाते। एक

बार उन्होंने तीन दिन और तीन रात अकेले अखण्ड कीर्तन करनेका संकल्प किया। निद्रादेवीसे लिखकर प्रार्थना की—"तीन दिन यहाँ कृपा न करना" और कागज ठाकुरजीके चरणोंके नीचे रख दिया, जैसे निद्रा-देवीको ठाकुरके चरणोंमें सुला दिया। तब तीन दिन बिना पलक मारे अकेले कीर्तन किया। इस बीच मधुकरी को भी नहीं गये। उनके एक साथी बाबाजी मधुकरी माँग लाते और केवल उतनी देर जितनी देर उन्हें मधुकरी पाने और शौच जानेमें लगती वह बाबाजी कीर्तन करते।

इस प्रकार व्रजमें भ्रमण करते हुए जब बहुत दिन बीत गये, तब वे नन्दगाँवमें कदम्बखण्डीमें रहकर भजन करने लगे। कदम्बखण्डीमें उन्होंने एकबार महामन्त्रका पुरश्चरण किया। पुरश्चरणके फलस्वरूप उन्हें मन्त्रसिद्धि हुई। तभीसे अलौकिक शक्तियाँ उनके चरणोंमें लोटने लगीं और एक महात्यागी सिद्ध महात्माके रूपमें उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। वृन्दावनके कुम्भ मेलेमें उन्हें चार-सम्प्रदायके महन्तके पदपर नियुक्त किया गया। बहुत-से शिष्य-सेवकोंने उनका आश्रय ग्रहण किया। जिस साम्राज्यका अधिपति प्रभुने उन्हें बनाना चाहा था उसका तेजीसे विस्तार होने लगा। प्रभुका अपना इसमें कितना सक्रिय सहयोग था, दो-एक घटनाओंसे स्पष्ट होगा।

उड़ीसाके सभ्रान्त परिवारके एक संस्कारी बालकको भजनकी छटपटी लगी। वह एक योग्य गुरुकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करने लगा। बहुत चेष्टा करनेपर भी जब गुरु न मिले तो पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरमें जाकर उनसे प्रार्थना की—"प्रभु, आप जगत्के नाथ हैं। मैं भी इस जगत्का एक तुच्छ जीव हूँ। आपकी जीवोंपर अहैतुकी कृपाकी मैंने बहुत-सी कथाएँ सुनी हैं। क्या मेरे ऊपर भी कभी कृपा-दृष्ठि करेंगे? सुना है कि गुरुकी कृपाके बिना आपको प्राप्त करना संभव नहीं। पर गुरुदेव भी तो आपकी कृपासे ही प्राप्त हो सकेंगे। दया करो नाथ, जिससे गुरुदेवको प्राप्तकर शीघ्र उस पथका पथिक बन सकूँ, जिसपर चलकर आपके चरण-कमलोंको त्रितापहारी सुशीतल छायातक पहुँच सकता हूँ।"

वह जगन्नाथजीसे प्रार्थना कर रहा था और उसका वक्षस्थल प्रेमाश्रुओंसे सिक्त हो रहा था। उस समय उसके सामनेसे बलभद्र और सुभद्राकी मूर्तियाँ अदृश्य हो गयीं। बेदीपर दीखने लगा केवल जगन्नाथजीका गोलाकार विशाल मुखारविन्द, जिसके दोनों नेत्रोंसे अश्रुओंकी दो मोटी धाराएँ बह रही थीं।

अबोध बालकने समझा कि उसके किसी अपराधके कारण जगन्नाथजी दुःखी हैं, इसीलिए रो रहे हैं। वह क्या जानता था कि जिस प्रकार वह उनके प्रेममें रो रहा है उसी प्रकार वे भी उसके प्रेममें विह्वल हो अश्रु विसर्जन कर रहे हैं?! प्रेमकी मूर्ति श्रीजगन्नाथजी उसे

प्राप्त करनेको वैसे ही अधीर हो रहे हैं जैसे वह उन्हें प्राप्त करनेको !

दुःखी हो वह विमला देवीके मन्दिरमें गया। वहाँ भी उसी प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् उसने देखा कि विमलाकी मूर्तिका एक हाथ हिल रहा है। शायद हाथ हिलाकर वे भी उसे आशीर्वाद दे रहीं थीं। पर उनका यह संकेत भी उसकी समझमें न आया।

तब वह करुणावतार श्रीगौरांग महाप्रभुके दर्शन करने नवद्वीप गया। वहां भी उनके मन्दिरमें जाकर उनसे प्रार्थना की। वहाँ उसे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीविग्रहमें सिनेमाके चित्रोंकी तरह एक-के बाद एक पहले श्रीकृष्णके फिर श्रीराधाके और फिर एक नील बर्णकी सखीके दर्शन हुए। सखीके दर्शनके साथ महाप्रभुके भोगका समय हो आया और सामने परदा आ गया। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीविग्रहमें श्रीकृष्ण, श्रीराधा और उस सखीके दर्शन कर वह चमत्कृत हुआ। पर इसका भी रहस्य उस समय उसकी समझमें न आया।

गुरुकी खोजमें वह वृन्दावनके लिए चल पड़ा। वृन्दावन स्टेशनपर उतरते ही जब वह स्टेशनके बाहर ढालसे नीचे उतर रहा था, उसने देखा नित्यानन्ददास बाबाको उधरसे आते हुए। एकबार पहले उसने पुरीमें बाबाके दर्शन किये थे। वे देखते ही उसे पहचान गये। और अपने साथ गोवर्धन ले गये। उनके कुछ ही दिनोंके सत्संगसे

उसे बोध होने लगा जैसे उसके गुरु वे ही हैं। उनसे दीक्षा लेकर वह निश्चित हुआ।

उसकी इच्छा हुई अपने गुरु महाराजका एक चित्र अपने साथ रखने की। चित्रके लिए उसने गुरु महाराजसे प्रार्थना की। उन्होंने फोटोग्राफरको बुलानेका आदेश दिया। वह वृन्दावन जाकर गोपीनाथ बाजारके फोटोग्राफर श्रीकालीबाबूको बुला लाया। कालीबाबूने जब कैमरा सेट कर लिया और फोटो लेनेको हुए तब बाबाने उससे कहा—"तुम जरा जाकर कैमरेमें देखो तो फोकस ठीक हुआ, या नहीं।" उसने फोटोग्राफरकी अनुमति ले कैमरेके ऊपरका काला कपड़ा अपने सिरपर डाला और लेन्समेंसे बाबाकी तरफ देखा। "हैं! यह क्या ?! यहां तो बाबाके स्थानपर वह सखी बैठी है, जिसके मैंने नवद्वीपमें महाप्रभुके श्रीविग्रहमें दर्शन किये थे ?" उसने कपड़ा हटाकर बाहर देखा तो बाबा ही दीखे। सखीरूपमें फिर उनके दर्शन करनेके लिए जब उसने कैमरेमेंसे फिर झाँका, तो भी बाबा ही दीखे।

उसे समझनेमें देर न लगी कि स्वरूपसे उसके गुरुदेव राधारानीकी सखी हैं और नवद्वीपमें श्रीमन्महाप्रभुने अपने स्वरूपमें श्रीकृष्ण, श्रीराधा और गुरुरूपा सखीके दर्शन देकर उन्हें बताया था कि राधा और कृष्ण उनसे अभिन्न हैं और उनकी गुरुरूपा सखी भी राधारानीका ही अभिन्न प्रकाश है। उसे यह भी समझनेमें देर न लगी कि उन्होंने ही उसे वृन्दावन जानेकी प्रेरणा देकर और

गुरुदेवको स्टेशन पहुँचनेकी प्रेरणा देकर उसकी गुरु-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया था।

इसी प्रकार श्रीश्यामसुन्दरदासजी, श्रीव्रजसुन्दर दासजी, श्रीगोपीनाथदासजी और श्रीगौरगोविन्ददासजी जैसे और भी वहुत-से परम त्यागी और होनहार शिष्य एक-एककर प्रभुकी प्रेरणासे उनके परिवारमें सम्मिलित होते गये।

वहुत-से ग्रहस्थ भक्तोंने भी बाबाका आश्रय ग्रहण किया, जिनमेंसे मथुराके श्रीगिरिराजधरणजीका नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।

बाबा अपनेको बहुत छिपाकर रखते थे। पर स्वयं प्रभु जिसका देश-विदेशमें प्रचार करते फिरें वह कबतक छिपा रह सकता है? सुदूर अमृतसरमें बाबाको कोई नहीं जानता था। वहाँ भी प्रभुकी प्रेरणासे उनकी कीर्ति फैलनेमें देर न लगी। वहाँ एक ब्राह्मण राधा-श्यामसुन्दर के श्रीविग्रहकी सेवा किया करता था। उससे एक रात उन्होंने स्वप्नमें कहा—"हमें नन्दग्राममें नित्यानन्ददास बाबाके निकट पहुँचा दो। हम अब उनकी सेवा ग्रहण करेंगे।"

उनका आदेश प्राप्तकर ब्राह्मण उन्हें साथ ले नन्दग्राम की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर पूछते-पूछते नित्यानन्ददास बाबाके पास पहुँचा। उनसे अपने स्वप्नकी बात कह राधा-श्यामसुन्दरको उन्हें सौंप दिया। बाबा विग्रह सेवाको भक्तिका प्रधान अंग मानते हुए भी उसे इतना

महत्व नहीं देते थे,जितना नाम-कीर्तन को। वे कभी-कभी विनोदमें कहा करते थे—"विग्रह क्या है गल-ग्रह है ?" आशय होता था कि त्यागी बाबाजीके लिए विग्रह-सेवा उतना अनुकूल नहीं जितना नाम-कीर्तन। विग्रह-सेवाके लिए उसे तरह-तरहकी सेवाकी सामग्री जुटानी पड़ती है, जिससे भजनमें विक्षेप होता है। इसलिए उन्होंने कभी विग्रह-सेवा नहीं रखी। पर अब श्रीविग्रह आ ही गये तो क्या करते ? उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—"भाई, मैं तो नंगा बाबाजी हूँ। रूखी-सूखी खाकर पड़ा रहता हूँ। विग्रह-सेवा मेरे बसकी नहीं। पर इनकी इच्छा है मेरी सेवा लेनेकी तो छोड़ जाओ।"

राधा-श्यामसुन्दरके प्रति बाबाके उपेक्षाभरे शब्द सुन ब्राह्मणको दुःख हुआ। पर राधा-श्यामसुन्दरपर उसका कोई असर नहीं। दूसरा कोई मेहमान होता तो तुरत लौट जाता। पर ये दोनों मेहमान लौट जानेको तो आये थे नहीं। ये क्या जानते नहीं थे कि बिना बुलाए मेहमान का आदर नहीं होता, और खरी-खोटी भी कभी-कभी सुननी पड़ती है उसे ? जानते थे, पर जानकर भी आये थे। खरी-खोटी सुननेको ही आये थे। ये ऐसे अनोखे मेहमान थे, जिन्हें वेद-स्तुति भी उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी अपने प्रिय संभ्रम-संकोचरहित भक्तोंकी खरी-खोटी अच्छी लगती है। उनकी सेवा-पूजा भी उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी उनकी प्रीतिभरी उपेक्षा अच्छी लगती है !

बाबाने नन्दग्राममें मुखशोधनकुण्डके पास कुञ्जकुटीमें राधा-श्यामसुन्दरके रहनेकी व्यवस्था कर दी। यह स्थान ही अब बाबाका छोटा-सा आश्रम बन गया। शिष्य-सेवक राधा-श्यामसुन्दरकी सेवामें नियुक्त कर दिये गये। पर उनकी सेवाकी कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गयी। जो सहजरूपमें मधुकरीमें रूखा-सूखा मिल जाता उसीका उन्हें भोग लगा दिया जाता। शिष्य कभी कहते उन्हें कुछ विशेष भोग लगानेको,तो बाबा कह देते—"हम कोई इनके लिए अपना स्वरूप थोड़े ही बिगाड़ेंगे। हम जो फक्कड़ बाबाजी हैं, वही रहेंगे। इन्हें ही अपना स्वरूप बदलना होगा। बाबाजीके साथ बाबाजीकी तरह रहना होगा। कभी मालपुए आदिको मन चले, तो पास ही तो हैं नन्दबाबा। उनके पास जाकर जीम आया करेंगे।"

मन्त्र-सिद्धिके कुछ दिन बाद प्रभुने नित्यानन्ददास बाबाको प्रेरणा दी नाम-कीर्तनका प्रचार करनेकी। उन्होंने नाम-कीर्तनके प्रचारका बीड़ा उठाया। श्रीगिरि-राजधरनजी और उनके कुटुम्बके सहयोगसे उन्होंने 'भक्ति-प्रचारिणी-सभा' की स्थापना की और मथुराको प्रचार का केन्द्र बनाया। वृन्दावन, अलीगढ़, हाथरस, दिल्ली, अमृतसर, जयपुर, जगन्नाथपुरी आदि अनेक स्थानोंमें कहीं एक महीने, कहीं दो महीने और कहीं एक सालतक

का अखंड हरिनाम-संकीर्तन-यज्ञ किया। रथयात्रापर जगन्नाथपुरीमें और कुम्भके अवसरपर प्रयाग और हरिद्वार आदि स्थानोंमें भी वे प्रति बार जाकर एक महीनेका अखंड हरिनाम-कीर्तन करने लगे।

बाबाने अपना शेष-जीवन सर्वत्र हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार करनेमें ही व्यतीत किया। वे कहा करते कि भक्तिके चौसठ अंगोंमें पाँच अंग सर्व श्रेष्ठ हैं—नाम-कीर्तन, श्रीमूर्ति-सेवा, साधु-संग, व्रजवास और भागवत-श्रवण। इनमेंसे किसी एकका याजन करनेसे प्रेमकी प्राप्ति होती है। पर इनमें भी नाम-कीर्तन सर्वश्रेष्ठ है। नाम-कीर्तनके अतिरिक्त नामके श्रवण करने, जप करने, नामके लिखने और लिखे हुए नामके दर्शन करनेसे भी फलकी प्राप्ति होती है।

वे कहते कि नामके साधक दो प्रकारके हैं—नामाग्रही और नामाश्रयी। नामाग्रह नाम-साधनाकी पहली अवस्था है। इससे साधकका नाम-जप या नाम-कीर्तनमें आग्रह मात्र होता है। नामाश्रय नाम-साधनाकी दूसरी अवस्था है। इसमें साधक पूर्ण रूपसे नामका आश्रय ले लेता है। वह अपने आपको पूर्ण रूपसे नामको समर्पित कर देता है। नामके सिवा और कुछ जानता ही नहीं। इस अवस्थामें नाम नामीको साधकके पास खींचकर ले आता है।

अष्टयाम लीला-चिंतनका व्रजके साधकोंमें बहुत प्रचलन है। बाबा भी इसके समर्थक थे, पर वे नाम-

साधनाको इससे भी ऊँचा स्थान देते थे। उनका कहना था कि नाम कल्पतरु है। इसके द्वारा साधक सभी कुछ प्राप्त कर लेता है। नाम-कल्पतरुको प्रेमसे सींचते रहने से इसमें अंकुर फूट आते हैं और लीला-स्फूर्तिरूपी पल्लव उसमें अपने-आप विकसित हो जाते हैं। साधककी प्रारम्भिक अवस्थामें वे लीला-चिंतनका निषेध करते थे। कहते थे कि लीला-चिन्तन कोई हँसी-खेल नहीं। लीला-चिंतनमें साधक जुगलकी कोई सेवा लेकर रहता है, जो उसे तत्परतासे श्रद्धापूर्वक करनी होती है। एकबार उन्होंने बताया कि एक बाबाजी लीला-चिंतनमें सेवाकुञ्जमें जुगलकी पीकदानीकी सेवा करते थे। एक दिन वे समयानुसार चिंतनमें सेवा न कर सके। दूसरे दिन प्रातः जब वे सेवाकुञ्ज गये, तो देखा कि जगह-जगह पानकी पीकें पड़ी हैं। चिंतनमें जो सेवा की जाती है उसे प्रभु अङ्गीकार करते हैं। उसे पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ नियमित रूपसे न करनेसे अपराध होता है।

बाबाकी साधु-सेवामें भी बड़ी निष्ठा थी। नाम-प्रचारके लिए वे जहाँ भी जाते वहाँ साधु-सेवा भी ऐसी करते कि लोग चमत्कृत रह जाते। आश्चर्यकी बात यह है कि वे जाते खाली हाथ और लौटते भी खाली हाथ। पैसा कभी हाथसे स्पर्श भी न करते। पर जहां जिस पैमानेकी वैष्णव-सेवाका संकल्प करते, उसके लिए धन-जन न जाने कहाँसे खिचे चले आते। कभी-कभी वे

किसी व्यापारीसे कहते—"मुझे नाम-यज्ञ करना है और यज्ञके पश्चात् जितने भी साधु आ जायें सबकी सेवा करनी है। तुम साधु-सेवाके लिए सामग्री दे दो। जो भेंट आयेगी उससे तुम्हारा सब पैसा चुका दूँगा। यदि उससे न चुका, तो किसी और अवसरपर ब्याज-सहित चुका दूँगा। इस बीच यदि मर गया तो तुम्हारा कर्ज चुकानेके लिए फिरसे जन्म लूँगा।" व्यापारी जानते थे कि बाबाके किसी काममें पैसेकी कमी तो कभी होती नहीं। साक्षात् लक्ष्मी उनकी सेवाके लिए प्रस्तुत रहती हैं। इसलिये वे बिना सोचे-विचारे उन्हें जितनी भी सामग्रीकी आवश्यकता होती दे देते।

एकबार उन्होंने वृन्दावनमें कुम्भके अवसरपर नाम-यज्ञ किया। सेठ हरगुलालने आकर कहा—"बाबा, मेरे लिए कुछ सेवा हो तो आज्ञा करें।"

"करोगे ?" बाबाने ऊँचे स्वरमें पूछा।

"क्यों नहीं बाबा, आप आज्ञा करें।"

"१०० टीन घी भेज देना।"

"१०० टीन घीका क्या करेंगे बाबा ?"

"तुम देखोगे क्या करूँगा।"

सेठजीकी समझमें १०० टीन घीकी बात फिर भी न आयी। उन्होंने १० टीन घी भेज दिया। पर बाबाका इतने घीसे क्या बनाना था।

उसी दिन रातमें कानपुरके एक सेठको राधा-कृष्णने स्वप्नादेश दिया—"वृन्दावनके कुम्भ-मेलेमें महन्त नित्यानन्ददास बाबा नाम-यज्ञ कर रहे हैं। उन्हें १०० टीन घी और उसी परिमाणमें आटा, चीनी, मैदा और सूजी आदि पहुंचा दो।" दूसरे दिन ट्रकोंमें सामान लदकर चला आया। सेठजी साथ आये। बाबाका डेरा पूछते-पूछते उनके पास आकर बोले—"बाबा, आप ही न हैं महन्त नित्यानन्ददास बाबा? मुझे राधा-कृष्णने स्वप्नमें आपके भंडारे के लिए यह सब सामान पहुँचानेकी आज्ञा दी है। कृपाकर स्वीकार करें।"

"मैं महन्त-अहन्त कुछ नहीं। भण्डारेकी बात भी मैं नहीं जानता। महन्त और महन्ती तो वे हैं, जिन्होंने तुम्हें भेजा है। वे भण्डारा करेंगे, मैं देखूँगा। सामान छोड़ जाओ।"

नाम-यज्ञके शेष दिन बाबाने कुम्भमें आये सभी सम्प्रदायके साधुओंका जैसा भण्डारा किया, वैसा पहले कभी वृन्दावनके कुम्भमें नहीं हुआ था। उस आयोजनकी विशालताका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि उसमें २०० हलवाई कामपर लगे।

ऐसे ही एक सालभरके कीर्तन और विशाल उत्सवका आयोजन बाबाने हाथरसमें किया। हाथरसके उत्सवकी विशेषता यह थी कि उसमें वृन्दावनके बड़े महाप्रभुके

मन्दिरके श्रीविग्रह और श्रीगौरांगदास बाबाजी महाराज भी पधारे थे। महाप्रभुको हाथरस ले जाते समय एक विचित्र लीला घटी। पहले तो जब बाबासे हाथरसके भक्तोंने बड़े महाप्रभुको हाथरस ले चलनेको कहा, उन्होंने उत्तर दिया—"यह कैसे हो सकता है? सेवाके विग्रहको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानपर ले जाना ठीक नहीं। किसी आपत्तिके समय ही ऐसा किया जा सकता है। हाथरसतक महाप्रभुको लेजानेमें कितना कष्ट होगा उन्हें, तुम नहीं जानते? यदि तुम लोग महाप्रभुको ले जाओगे तो मैं नहीं जाऊँगा।" पर हाथरसके भक्तोंका प्रेम और आग्रह देख महाप्रभु स्वयं मचल पड़े। उन्होंने साक्षात् हो या स्वप्नमें, नित्यानन्ददास बाबासे कहा—"मैं हाथरस जाऊँगा।" तब बाबाने यकायक उलटा हठ पकड़ लिया—"महाप्रभु हाथरस जायेंगे तभी मैं जाऊँगा।" महाप्रभुके सेवाइत श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामीजी बड़े धर्म संकटमें पड़े। महाप्रभुको इतनी दूर ले जानेकी अनुमति भी नहीं दे सकते और एक महापुरुषके आग्रहको टाल भी नहीं सकते। उन्होंने हाथरसवालोंसे कहा—"भाई मैं क्या जानूँ। तुम जानो और तुम्हारे महाप्रभु। महाप्रभुके सामने चिट्ठी डालकर देख लो। यदि वे राजी हों, तो ले जाओ।" उनके सामने दो चिट्ठियां डाली गयीं। एकमें लिखा था, "मैं हाथरस जाऊँगा," दूसरीमें "मैं हाथरस नहीं जाऊँगा।" एक छोटे बालकसे चिट्ठी उठवाई गयी। पहली चिट्ठी निकल

आयी। भक्तोंने हर्ष-ध्वनिके साथ महाप्रभुकी जय-जयकार की। बड़े यत्नसे उन्हें हाथरस ले गये।

वहां उत्सवमें नित्य कीर्तन और कथा होती। कथा पहले नित्यानन्ददास बाबा कहते, पीछे गौरांगदास बाबाजी। नित्यानन्ददास बाबा साधनकी बात अधिक कहते, गौरांगदास बाबा रसकी। दोनों कथाओंकी विवेचना करते हुए नित्यानन्ददास बाबा कहते—"मेरी कथा तुम्हारे हृदयके मलको धोती है, गौरांगदासजीको उसे रंगकर आकर्षक और प्रभुके लिए लोभनीय बनाती है।"

श्रीनित्यानन्ददास बाबाके आनुगत्यमें और महाप्रभु और गौरांगदास बाबाके सान्निध्यमें उस उत्सवमें जो रस की वर्षा हुई, उसका वर्णन करते हुए आज भी हाथरसके भक्त रोमांचित हो जाते हैं। उनका कठ भर आता है और नेत्र सजल हो जाते हैं।

उत्सवमें जो अखंड दीप जलाया गया वह आज भी वैसे ही जल रहा है। बाबाने आज्ञा की थी—"यह अखंड दीप निरन्तर जलता रहे। अग्निदेव स्वयं अन्य देवगण सहित अलक्षित रूपसे कीर्तन चलाते रहेंगे। तुम लोग नित्य दो घण्टे उसमें सहयोग दे दिया करना।" हाथरस के भक्त बाबाकी आज्ञाका प्रेमसे पालन करते आ रहे हैं।

हाथरसके पश्चात् बाबाने अलीगढ़में भी वैसे ही साल भरके कीर्तनका आयोजन किया, जिसमें सहस्रों नर-

नारियोंने भाग लिया। दिनमें स्त्रियाँ भाग लेतीं, रात्रि में पुरुष। कीर्तनकी समाप्तिपर १०८ ब्राह्मणों द्वारा विष्णु-यज्ञ और एक बड़े उत्सवकी व्यवस्था की गयी। उस समय अलीगढ़में दफा १४४ लगी थी। पर कलेक्टरको कुछ अनुभव हुआ, जिसके कारण उसे दफा १४४में भी उत्सवकी इजाजत देनी पड़ी। मुसलमानोंने भी उत्सवमें सहयोग किया।

यज्ञमें घीकी कमी पड़ गयी। बाबाने माताओंसे एक-एक तोला घी घरसे लानेको कहा। इतना घी एकत्र हो गया कि उसे शेष करना मुश्किल हो गया। केलेके पेड़के छिलकोंकी नालीसे बहाकर घीकी मोटी-मोटी धारें अग्नि कुण्डमें उड़ेली गयीं। अन्तिम दिन साधु-सेवाके पश्चात् सामान इतना बचा कि अलीगढ़के लगभग सभी हिन्दुओंके घर एक-एक पैकेट मिठाई भेजी जा सकी। जो भेंट आती रही बाबाने एक सत्संग-भवनके निर्माणके लिये अलीगढ़के भक्तोंको सौंप दी। सत्संग भवन और उसके ऊपर एक गीता-भवनका निर्माण बाबाके सामने उत्सव समाप्तिके पूर्व ही हो गया। सत्संग-भवनमें नित्य कीर्तनकी व्यवस्था कर दी गयी।

अलीगढ़में लोगोंने बाबाकी आसन-सिद्धिकी बात विशेष रूपसे नोट की। वे दिनभर भजन-कीर्तनमें संलग्न रहते। शाम ६ बजे प्रसाद पाकर ८ बजेतक विश्राम करते। फिर ८ बजेसे प्रातः ४ बजेतक एक आसनपर बैठे रहकर हरिनाम करते।

अलीगढ़के उत्सवके सम्बन्धमें एक और उल्लेखनीय बात यह है कि गीता-भवनमें किसी विशेष आयोजनके अवसरपर श्रीदुर्गासरन एडवोकेटने बाबासे प्रवचन करने की प्रार्थना की। उसमें बहुतसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंको आमन्त्रित किया गया था। बाबाने कहा—"मैं अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंकी सभामें क्या बोलूँगा? 'खगकी भाषा खग ही जाने।' तुम गोपीनाथको ले आओ।"

गोपीनाथदास बाबा अंग्रेजीके प्रोफेसर रह चुके थे। इसलिये उन्होंने उन्हें इस कार्यके लिये उपयुक्त समझा। सभामें एक विद्वान सन्यासीको भी बोलनेके लिये आमंत्रित किया गया था। उन्होंने अद्वैत सिद्धांतपर बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। उनके पहले और कई विद्वान बोल चुके थे। पर उनके भाषणके बाद ऐसा लगा कि उसदिन का सेहरा उन्हींके सिर बँधेगा। पर उसके बाद गोपीनाथदास बाबासे बोलनेको कहा गया। उन्होंने उससे भी कहीं अधिक प्रभावशाली ढंगसे उन सभी तर्कोंको काटकर रख दिया, जो सन्यासीजीने अद्वैतमतकी पुष्टीमें प्रस्तुत किये थे। उन्हें लगा कि बाबाकी कृपासे उनके मन-मानसमें ऐसे विचारोंका अजस्र स्रोत उमड़ा चला आ रहा है, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। वे केवल यन्त्रवत् अंग्रेजी भाषामें उन्हें श्रोताओंके समक्ष प्रस्तुत करते जाते थे।

गोपीनाथदास बाबाको तनिक भी संदेह नहीं था कि बाबाकी अपनी शक्ति ही उनके माध्यमसे कार्य कर रही

थी। पर जब लोगोंने उनके भाषणकी बाबासे प्रशंसा की, तो उन्होंने उनसे कहा—"अब तुम कहीं भाषण मत करना। जो दूसरे कहें उसे केवल सुन लेना। किसीका खण्डन-मण्डन करना ठीक नहीं।"

उड़ीसामें भी बाबाने गाँव-गाँवमें जाकर नाम-कीर्तन का बहुत प्रचार किया। उत्तरी भारतके श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी तरह वहाँ उन्होंने नाम-सप्ताहकी प्रथा चलाई, जिसमें भक्त-मंडलियाँ सात दिन तक बारी-बारीसे नृत्यके साथ अखण्ड नाम-कीर्तन करती हैं।

साधारण लोगोंकी बाबाके सम्बन्धमें धारणा थी कि वे नाम-कीर्तनके प्रचारके उद्देश्यसे अपनो अलौकिक शक्तिका प्रयोग कर इतने विशाल आयोजनोंके लिए अपार सामग्री एकत्र करनेमें समर्थ होते हैं। भिक्षा माँगनेकी बात तो केवल उसपर ढक्कन डालनेके लिए होती है। पर जो भी हो, वे अपनी अलौकिक शक्तिका प्रयोग भगवत् कार्यके लिए ही करते थे, किसीके सासांरिक कार्यके लिए नहीं।

जब हाथरसमें अखण्ड हरिनाम-कीर्तन चल रहा था बाबा श्रीलक्ष्मीनारायणजीके यहाँ ठहरे थे। किसी व्यक्ति का एकलौता लड़का असाध्य बीमारीसे पीड़ित था। उसने कातर स्वरसे बाबासे उसके लिए कुछ करनेकी प्रार्थना की। पर बाबाने सीधे-सहज भावसे अपनी अस-

मर्थता प्रकट कर दी। लक्ष्मीनारायणजी बाबाके अन्तरंग भक्तोंमेंसे थे। उसके चले जानेपर उन्होंने उनसे कहा—"बाबा, वह बिचारा कितना दुःखी था। आप झूठ ही कुछ कह देते, तो उसे अभी तो शांति मिल जाती। पीछे जो होना होता होता।"

बाबाने कड़ककर कहा—"अरे मूर्ख! मैं झूठ भी कह देता, तो लड़का बच जाता। पर उससे क्या उसका मंगल होता? साला जिस कीचड़में फँसा है, उसमें और फँस जाता। हम कीचड़से निकालनेवाला बाबा है, फँसानेवाला नहीं।"

भगवान् और भगवन्नाममें लोगोंकी श्रद्धा दृढ़ करनेके लिए बाबा अपनी शक्तिका प्रयोग अकसर करते। एकबार उनके शिष्य श्री गोपीनाथदासजीने कहा—"बाबा, गुरुदेवके 'अभयकर' की बात जो कही जाती है, उसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है मैं नहीं समझा।"

बाबाने कहा—"देखो, अभयकर इसे कहते हैं" और उन्होंने अपना दाहिना हाथ उनके सिरपर उससे डेढ़ बालिस्त ऊपर फैला दिया। उसके साथ ही उन्हें लगा कि जैसे एक करेंटने उनके भीतर प्रवेश किया और एक सुशीतल, आनन्दमय अनुभूति उन्हें होने लगी। साथ ही ऐसा कम्प होने लगा कि वे उसे सम्हाल न सके।

बाबा और उनके एक साथी कदम्बखण्डीमें एक शुष्क कदम्बके नीचे हरिनाम-कीर्तन किया करते थे। उनके

साथीने कहा—"मैंने हरिनामके प्रभावसे 'शुष्कतरु पल्लवे' की बात कहीं पढ़ी है। पर इस तरुके नीचे हम लोग इतने दिनसे नाम-कीर्तन कर रहे हैं। इसमें तो पल्लव आये नहीं।"

बाबाने कहा—"नाम-प्रभु कृपा करेंगे तो आ जायेंगे।" कुछ ही दिन बाद उसमें अंकुर फूटने लगे और वृक्ष पत्तोंसे हरा-भरा हो गया !

बाबा एकबार जब रथ-यात्रापर पुरी गये, बरहम-पुरके ट्रेनिंग कालेजके गोपीनाथदास बाबाके पूर्वाश्रमके एक सहयोगीने उनसे कहा—"मैं आस्तिक भावका व्यक्ति हूँ। भक्ति-साहित्यका मैंने अध्ययन भी अच्छा किया है। फिर भी मुझे वैसा विश्वास नहीं, जैसा होना चाहिये। इसलिए मैं भजन-साधन कुछ नहीं कर पाता। यदि आप मुझे कुछ प्रत्यक्ष अनुभव करा दें, जिससे मैं भजनमें प्रवृत्त हो सकूं तो बड़ी कृपा होगी।"

बाबाने कहा—"अच्छा, ऐसे बैठो।" पद्मासनसे उन्हें बैठाकर अपने अँगूठेसे उन्हें स्पर्श कर दिया। स्पर्श करते ही उन्हें कुछ अलौकिक अनुभव हुआ। वे उठकर इधर-उधर भागने लगे। लोगोंने समझा वे पागल हो गये। उन्हें पकड़कर बैठाना चाहा। बाबाने कहा—"छोड़ दो। अभी ठीक हो जायगा।"

थोड़ी देर बाद जब वे प्रकृतिस्थ हुए, उन्होंने बताया कि उन्हें लगा कि जैसे कृष्ण उनके साथ लुका-छिपी खेल

रहे हैं, और वे उनके पीछे-पीछे भाग रहे हैं। उसी दिन उन्होंने बाबाका आश्रय ग्रहण किया और भजन-साधनमें लग गये।

बाबाने उन्हें अधिकारी समझकर ही उनके ऊपर यह कृपा की होगी। पर वैसे भी की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भगवत्-कृपाके सदृश उनके भक्तोंकी कृपा भी पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष है। जब जिसपर चाहे बरस जाये।

नन्दगाँवमें बाबाकी एक शिष्या रहती थी। बड़ी भजननिष्ठ और भोले स्वभावकी थी वह। उसने एक दिन बाबासे रोकर कहा–"मैं इतने दिनसे भजन कर रही हूँ। जैसे आपने कहा वैसे ही कर रही हूँ। तो भी मुझे अभीतक जुगलके दर्शन नहीं हुए। ऐसे भजनसे क्या लाभ ? सब कहते हैं बाबा चाहें तो दर्शन करा दें। तो आप क्यों नहीं करा देते ?"

बाबाने कहा—"तू चिंता न कर। तुझे दर्शन होंगे।" फिर कज्जलकुण्डके पास एक कदम्बके वृक्षकी ओर संकेत करते हुए बोले—"देख, उस वृक्षके पास बैठकर भजन किया कर।"

तबसे वह उस कदम्बके पास बैठकर भजन करने लगी। कुछ दिन बाद उसे जुगलके दर्शन हुए, श्रीकृष्णके कदम्बके ऊपर और राधारानीके उसके नीचे। दर्शन करते ही उसकी मानसिक स्थिति न जाने कैसी हो गयी।

वह दिन-रात उस कदम्बके पास ही बैठी रहती। घर-वाले लेने आते तो जानेको मना कर देती। कोई कुछ खानेको देता तो उसे भी अस्वीकार कर देती। भूख लगती तो कुण्डकी कीचड़ खाकर रह जाती। नौ महीने बाद वह कुछ प्रकृतिस्थ हुई, तो घर जाकर रहने लगी। उससे किसीने पूछा—"तू इतने दिन कीचड़ खाकर कैसे रही ?"

उसने उत्तर दिया—"मैंने कीचड़ कब खायी ? मैं खीरसा[1] खाती थी।"

गुरु-भक्तिपर बाबा बहुत अधिक बल दिया करते थे। वे कहते थे कि गुरु-पूजा भगवत्-पूजासे भी बड़ी है—

"जार प्रति गुरुदेव हन परसन्न
कोनो विघ्ने सेह नाईं हय अवसन्न।
कृष्ण रुष्ट हले गुरु राखिवारे पारे,
गुरु रुष्ट हले कृष्ण राखिवारे नारे॥

—श्रीसनातन गोस्वामी

—जिससे गुरुदेव प्रसन्न हों, उसपर किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा नहीं आती। कृष्ण यदि उससे रुष्ट हों, तो भी गुरु रक्षा कर सकता है, पर यदि गुरु रुष्ट हों तो कृष्ण रक्षा नहीं कर सकते।"

---

१. दूधकी बनी एक मिठाई जो कुलियामें भरी हुई व्रजमें मिलती है।

गुरु-भक्तिके आदर्श रूपमें उन्होंने अपने शिष्य श्रीगिरिराजधरनके सुपुत्र श्रीनाथजीको तैयार किया था। गुरुगत प्राण श्रीनाथजीने गुरुदेवको पूर्ण आत्म-समर्पण कर रखा था। वे गुरुदेवको छोड़ और कुछ जानते ही न थे। उनके पुत्रका अस्पतालमें आपरेशन हुआ। मात्रासे अधिक क्लोरोफार्म दिये जानेके कारण उसे आपरेशनके बाद भी बहुत देरतक होश न आया। ऐसी स्थितिमें जब उसके प्राण अधरमें लटके हुए थे, श्रीनाथजी अपनी बगीचीमें गुरु-सेवामें लगे थे। थोड़ी देर बाद जब उसके प्राण निकल गये, उस समय वे गुरुदेवको भोग अर्पण कर रहे थे। अन्तरयामी गुरुदेवको पता था कि उस समय अस्पतालमें बालकके प्राण निकल चुके थे। उन्होंने अपने निकट बैठे कुछ भक्तोंसे कहा—"नवद्वीपमें श्रीवास पंडितके घर एक ओर उनका पुत्र मरा पड़ा था, दूसरी ओर घरमें ही वे महाप्रभु और उनके भक्तोंके साथ नृत्य-कीर्तन कर रहे थे। वैसे ही यहाँ अस्पतालमें श्रीनाथका पुत्र मरा पड़ा है और यह गुरुसेवामें लगा है।" श्रीनाथजीने भी यह बात सुनी, पर इससे उनकी गुरु-सेवामें कोई अन्तर न पड़ा। उन्होंने घरमें भी सब लोगों से शांत रहनेको कहा, जिससे गुरु-सेवामें किसी प्रकारका विक्षेप न हो।

बाबाने ऐतिहासिक दृष्टिसे दो बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये, जिनके पीछे उनका हाथ होनेके बारेमें बहुत कम

लोग जानते हैं। भारतके विभाजनके समय नदिया जिले के पूर्व-पाकिस्तानमें जानेकी बात लगभग तय थी। बाबा को जब इसका पता चला, वे रो पड़े। उन्होंने कहा—"कलिपावनावतार श्रीमन्महाप्रभुकी पवित्र जन्मभूमि पाकिस्तानमें चली जाय, यह मैं अपने जीते-जी नहीं देख सकता। मैं सत्याग्रह करूँगा। मेरे प्राण भले ही चले जायें, पर नदियाको नहीं जाने दूँगा।"

उन्होंने इसके विरुद्ध अपील करनेको लाखों लोगोंसे हस्ताक्षर कराये और सत्याग्रहकी तैयारीमें लग गये। यह था उनके आन्दोलनका बाहरी रूप। पर उनके अन्तरमें एक और आन्दोलन चल रहा था। वहाँ देशके नेताओंसे नहीं. स्वयं श्रीनदियाबिहारीसे अपील की जा रही थी। नदियाविहारी अपने भक्तकी पुकार न सुनते, यह कब संभव था? उन्होंने उन्हें आश्वत किया कि नदिया भारतका ही अंग रहेगा। तब बाबाने निश्चिन्त हो आँदोलन आगे बढ़ानेका विचार छोड़ दिया। कुछ ही दिनों बाद यह समाचार अखबारोंमें छप गया कि नदिया पाकिस्तानके नक्शेसे निकाल दिया गया।

बाबाने राधाकुण्डका भी उद्धार किया। ब्रजमें राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड नामके दो विशाल कुण्ड हैं, जिनका निर्माण श्रीराधा और श्रीकृष्णने किया था। वराह आदि पुराणोंमें इनके निर्माणका वर्णन है। इन दोनों कुण्डोंमें राधाकुण्डकी महिमा विशेष है। श्रीकृष्णने

राधासे कहा था—"प्रियतमे, तुम्हारे इस कुण्डकी महिमा मेरे कुण्डसे भी अधिक होगी। इसमें मैं नित्य स्नान और जल-केलि किया करूँगा।" कहा जाता है कि श्रीकृष्ण स्वयं इस कुण्डके मार्गपर झाड़ू लगाया करते हैं—

महारानी श्रीराधिका अष्टसखिनके झुंड।
डगर बुहारत साँवरो जय जय राधाकुंड॥

श्रीचैतन्य-चरितामृतमें इस कुण्डकी महिमाका वर्णन इस प्रकार है—

सेई कुण्डे जेइ एकबार करे स्नान।
तारे राधासम प्रेम कृष्ण करे दान॥

—जो उस कुण्डमें एकबार स्नान कर लेता है, उसे श्रीकृष्ण राधाके समान प्रेम दान करते हैं।

परमकरुणामयी श्रीराधारानीने जीवोंके प्रति करुणा कर श्रीकृष्णसे परिहास करनेके छलसे इन दोनों कुण्डोंको प्रकट किया था। कालान्तरमें ये लुप्त हो गये थे। राधा भाव-विभावित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने इन्हें फिरसे प्रकट किया। पर तबसे अब बहुत दिन बीत चुके थे। राधाकुण्डका जल इतना गन्दा हो गया था कि भक्तोंको इसका सेवन करनेमें और इसमें स्नान करनेमें बड़ा कष्ट होता था। श्रद्धालु भक्त उस कष्टको सहन करके भी उसके जलका सेवन करते थे। यह देख नित्यानन्ददास बाबाने इस परमपावन सरोवरका पंकोद्धार करानेका संकल्प किया। कार्य बहुत व्यय-साध्य था। इस विशाल कुण्डका जल और कीचड़ निकालकर बाहर फेंकनेके लिए

लाखों रुपयेकी आवश्यकता थी। बाबा किसके पास जाते धन मांगने। उन्होंने राधारानीको स्मरण कर राधाकुण्ड के तीरपर अखण्ड नाम-कीर्तन आरम्भ किया। राधारानीने कलकत्तेके एक धनाढ्य भक्त श्रीप्रियानाथपालको प्रेरणा दी। उनके अर्थ-व्ययसे संकीर्तनकी ध्वनिके बीच यह सारा कार्य लगभग एक वर्षमें सम्पन्न हुआ।

बहुत समयसे नन्दग्राममें रहते-रहते बाबा नन्दग्रामके अभिन्न अंग बन गये थे। नन्दग्रामके व्रजवासी, बालक-बूढ़े सब उनसे स्नेह करते थे। वे सब जैसे एक बड़े परिवारके सदस्य थे, जिसके बाबा मुखिया थे। वे अपने दुःख-सुख और भाव-अभावकी बात उनसे कहते और वे अपने भक्तोंकी सहायतासे उनके अभावकी पूर्ति करनेकी चेष्टा करते। नन्दलाला भी अपनी सुख-सुविधाके लिए बहुत कुछ उन्हींपर निर्भर रहते। कभी-कभी मन्दिरमें धनके अभावके कारण नन्दलालाकी सेवाकी व्यवस्था बिगड़ जाती, तो बाबा श्रीमद्भागवतकी एक सप्ताहकी कथा कहते। जो चढ़ावा आता मंदिरको भेंट कर देते।

एकबार जब वे नाम-प्रचारार्थ अमृतसर गये हुए थे, नन्दलालाका अङ्गराग हुआ। पर उनके नये कपड़े न बनाये जा सके। नन्दलालाने अमृतसरमें बाबासे शिकायत की। उन्होंने अपने एक भक्तसे सुन्दर मखमलकी पोशाक बनवाकर और उसपर जरीका काम करवाकर भेज दी।

आज भी वह पोशाक नन्दलाला विशेष-विशेष उत्सवोंपर बड़े प्रेमसे धारण करते हैं।

नन्दलालाकी जरीकी पोशाक बन गयी, तो उन्हें मुकुट, लकुट और वंशी भी सोनेकी चाहिए थी। बाबाने उसका भी प्रबन्ध कर दिया। दिल्लीके एक बड़े व्यापारी की पत्नी बीमार पड़ी। उसके जीवनकी कोई आशा न रही। जब सभी डाक्टरोंने जवाब दे दिया, तो वह उसे नन्दगाँव ले आया और बाबाके चरणोंमें डाल दिया। बाबाकी कृपासे वह स्वस्थ हो गयी। तब उसने २०० साधुओंको व्रजसे ले जाकर दिल्लीमें अखण्ड कीर्तन और एक बड़ा उत्सव किया। उत्सवके पश्चात् उसने बाबासे कुछ सेवा स्वीकार करनेका आग्रह किया। बाबाने कहा —"मुझे कुछ नहीं चाहिए। यदि तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा ही है, तो नन्दलालाकी करो। उनके लिए सोनेका मुकुट, लकुट और बंसी बनवा दो।" व्यापारी बहुत खुश हुआ। उसने नन्दलालाके लिए बहुत सुन्दर रत्नजटित सोनेके मुकुट, लकुट और बंसी बनवा दिये, जिन्हें वे आज भी विशेष अवसरोंपर धारण करते हैं।

बाबाके एक भक्त श्रीबिहारीलाल पोद्दारके लड़केका विवाह हुआ। उन्होंने बाबासे बारातमें चलनेका आग्रह किया। बाबाने कहा, 'चलेंगे। पर हमारे सखा-सखी भी हमारे साथ चलेंगे।' उनके कहे अनुसार पोद्दारजीने आठ गोस्वामी बालकों और आठ गोस्वामी बालिकाओंको

भी आमन्त्रित कर दिया। वे सब गये ताँगोंमें बैठकर कीर्तन करते हुए, बाबा और उनके सेवक गये पैदल कीर्तन करते हुए। गोस्वामी-बालक और बालिकाओंकी बारातियोंमें सबसे अधिक सेवा की गयी। रमण गोस्वामी नामके एक उद्दंड प्रकृतिके गोस्वामीको जब इसका पता चला, तो उन्होंने बाबाके पास जाकर उन्हें गालियाँ सुनाई और थप्पड़ मारकर कहा—"मुझे क्यों नहीं ले गया ?" बाबाने गोस्वामीजीको दण्डवत् कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की। पर नन्दलालासे बाबाका यह अपमान न देखा गया। कुछ दिन बाद गोस्वामीजी मंदिर की छतसे गिरे और मर गये।

नन्दलाला बाबासे कम सहनशील थे क्या ? नहीं, उनके बराबर सहनशील और कौन हो सकता है, जिन्होंने भृगुका पदाघात सहन करके भी उनसे क्षमा-प्रार्थना की थी ? पर उनसे अपने भक्तका अपमान सहन नहीं हुआ। यह सर्वशक्ति और सर्वगुणसम्पन्न नन्दके उस लालाकी सबसे बड़ी लाचारी है कि वह अपने प्रिय भक्तोंका अपमान सहन नहीं कर सकता।

बाबा अकसर कहा करते–"हरे मथुरा, मरे वृन्दावन, जरे नन्दगाँव।" उनका तात्पर्य होता—मथुरा सारा जीवन मेरे प्रचारका केन्द्र रहा। वहाँ मैं स्वस्थ रहा। अब मरूँगा वृन्दावन जाकर, और जलाया जाऊँगा

नन्दगाँवमें।" एकदिन उन्होंने नन्दगाँवकी उस महिला को, जिसे उनकी कृपासे कदम्बके निकट भजन करते हुए जुगलके दर्शन हुए थे, बुलाया और एक स्थानको दिखाते हुए कहा—"यहाँ नन्दगाँवकी गइयोंके गोबरसे लीपना, दीपक और अगरबत्ती जलाना और नित्य सुबह-शाम महामन्त्रका जप करना।" नन्दगाँवके व्रजवासियोंसे कहा—"जब मेरा शरीर वृन्दावनसे यहाँ आये, इस स्थान पर मेरा संस्कार करना। नन्द-गाँवकी गइयोंके गोबरके कंडे सब व्रजवासी मेरे ऊपर दो-दो डालना। जब शरीर जल जाये, उसकी भस्म नन्दगाँवमें सब जगह बखेर देना, जिससे नन्दलालाके चरण उसपर पड़ा करें।

वह महिला उसी दिनसे बाबाके संस्कारके लिए भूमि तैयार करनेमें जुट गयी। बाबा विनोदमें उसे श्मशान देवी कहकर पुकारने लगे।

शरीर छोड़नेके एक वर्ष पूर्व वे वृन्दावन चले गये। वहाँ अपने गुरु-स्थान 'गोपाल गुरु' में रहकर भजन करने लगे। सारा दिन और रात नाम-जप करते। बाहर कहीं न जाते। किसीसे बात भी विशेष न करते। कोई उनके पास आता तो कहते—'५ मिनट नाम-कीर्तनकी भिक्षा दो।' वह ५ मिनट नाम-कीर्तन सुनाता और चला जाता। उनके सामने आगे-पीछे बड़े-बड़े अक्षरोंमें हरि-नाम महामन्त्र लिखा रहता। महाप्रभुकी अर्धाङ्गिनी श्रीविष्णुप्रियाकी तरह वे चावलके दानोंकी सहायतासे हरिनामकी गणना करते। इस प्रकार उन्होंने हरिनाम

का दर्शन, हरिनामका श्रवण और हरिनामका ही कीर्तन करते हुए एक वर्ष अपने गुरु-स्थानपर व्यतीत किया। हरिनाम-श्रवण-कीर्तनके साथ-साथ उनका लीला-चिंतन बराबर चलता रहा।

सन् १९६४ नित्यानन्द द्वादशीके दिनसे उनका शरीर कुछ अस्वस्थ लगने लगा। फाल्गुनी शुक्ला एकादशीको वे दिनभर नेत्र बन्द किये पड़े रहे। चारों ओर शोक और विषाद छा गया। सबने समझा कि यह उनका शेष दिन है। पर रात १० बजे उन्होंने नेत्र खोले। विषादके वातावरणमें आशाकी एक किरण फूट निकली। "जय निताई" की हर्ष ध्वनिसे आकाश गूँज गया। उस ध्वनिके साथ ही रात्रि १० बजे, जो अष्ट-याम लीलामें रासका समयसे है, बाबाने रास-लीलामें प्रवेश किया।

उनका पार्थिव शरीर उनके पूर्वनिर्देशके अनुसार नन्दगाँव ले जाया गया। उसी स्थानपर जिसे श्मशान देवीने ठीक कर रखा था उनका अन्तिम संस्कार हुआ। नन्दगाँवके स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध सभी ब्रजवासियों ने अपने-अपने घरसे कंडे लाकर बाबाकी चितापर डाले। क्रन्दन और कीर्तनके साथ उनका दाह-संस्कार किया। उनकी भस्म नन्दगाँवमें सर्वत्र बखेरी और अपने-अपने माथेपर चढ़ाई।

कई स्थानोंपर नाम-कीर्तन और साधु-सेवाका जो कार्यक्रम बाबाने प्रारम्भ किया था उनके भक्त उनकी स्मृतिमें आज भी चला रहे हैं। उन्होंने एकबार श्रीनाथजी

से १००८ नाम-सप्ताह यज्ञकी बात चलाई थी। उनके धाम पधारनेके पश्चात् श्रीनाथजीने अपनी बगीचीमें इसका शुभारम्भ किया। आज भी यह विधिवत् चल रहा है। सन् १९८४ में इसकी समाप्ति होनेको है।

नन्दगाँवमें बाबाके प्रधान शिष्य श्रीराधेश्यामदास बाबाजी महाराजके प्रयाससे नाम-सेवा और वैष्णव-सेवा उसी रीतिसे होती आ रही है, जिस रीतिसे बाबा किया करते थे। जन्माष्टमी, होली और दोनों ब्रज परिक्रमाओं के अवसरपर बाबा नन्दगाँवमें आये सभी साधु-वैष्णवोंकी की पंगत किया करते थे, जो आज भी हो रही है।

श्रीप्रेममाधुरी बाईजी

(वृन्दावन)

डा० नारायणदास परवाल (महेश्वरी) जयपुर दरबार के पारिवारिक चिकित्सक थे। जयपुरमें उनका बड़ा सम्मान था। उनके एक पुत्र और तीन कन्याओंने जन्म लिया। मझली कन्या घनवन्ती बाईका जन्म सम्वत् १९५६, चैत्र शुक्ला सप्तमीको हुआ।

डा० नारायणदास कट्टर आर्यसमाजी थे। घरमें उनका कड़ा शासन था। आर्यसमाजी पद्धतिसे होमादि नित्य होता था। पर मन्दिरमें या श्रीमद्भागवतादिकी कथामें जानेकी परिवारके सभी लोगोंको मनाही थी। धनवन्तीबाई इसी वातावरणमें पलीं। शिक्षा भी उन्हें आर्यसमाजके ही एक स्कूलमें दी गयी, जिससे उनके आर्यसमाजी संस्कार और भी दृढ़ हो गये।

अल्पावस्थामें उनका विवाह हो गया। जब वे १६ वर्ष की ही थीं, उनके पतिका स्वर्गवास हो गया। वे मायके जाकर रहने लगीं। उनके मनमें सदा उदासी छायी रहती। संसार सूना और उजड़ा-उजड़ा-सा लगता।

एकदिन वे अपने घरकी छतपर टहल रही थीं। घर के सामने 'डिग्गी नोहरा' में वृन्दावनकी एक रास-मंडली कृष्ण-सुदामा लीला कर रही थी। लीला छतसे दिखाई दे रही थी।

धनवन्तीबाई मण्डलीके श्रीकृष्ण-स्वरूपकी अनुपम रूप-माधुरी, वेश-भूषा, और उनका अनोखा नृत्य-गीत और हाव-भाव देख मुग्ध हो गयीं। सुदामाके प्रति उनका भक्त-वात्सल्य, दैन्य और प्रेम-वैवश्य देख उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें एक नयी दिशा मिल गयी, उनके मृत देहमें नये प्राणोंका संचार हो गया। उनके हृदयाकाशसे विषादके बादल सहसा छटने लगे और आशाकी नयी किरणें फूटने लगीं। वे सोचने लगीं—"मैं भगवान्‌को केवल सृष्टिका रचयिता, त्रिलोकीका अधिपति और शासक

जानती थी। पर वे तो भक्तोंके सुहृद, सखा और बन्धु भी हैं। मैं उन्हें केवल आप्तकाम, आत्माराम, निर्मोही और निस्पृह जानती थी, पर वे लीलामय, करुणामय, भक्त-वत्सल और भक्त-पराधीन भी हैं। जो उन्हें सुदामा की तरह अपना भाई-बन्धु कुछ मान लेता है, वे भी उसे अपने भक्तवात्सल्यके कारण उससे वैसा ही सम्बन्ध माननेको और उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करनेको बाध्य हैं। ऐसे परमकरुण भगवान्‌के होते शोक और विषादका क्या कारण ? मैं भी क्यों न उन्हें अपना मान उनसे प्रेमका सम्बन्ध जोड़ और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर अपना जीवन सार्थक करूँ ?"

सुदामाको आलिंगन कर श्रीकृष्णके प्रेमाश्रु बह निकले थे। उनका रोना देख धनवन्तीबाईको भी रोना आ गया था। उनका दुःखी, असहाय सुदामासे भाव-तादात्म्य हो गया था। उन्हें लगा था कि जैसे श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें आलिंगनकर, उनके हृदयकी जन्म-जन्मान्तरकी पीड़ा दूर कर, और उसे एक अनिर्वचनीय शांतिसे परिपूरित कर अंतर्धान हो गये हैं।

धनवन्तीबाई रोईं तो पहले भी बहुत थीं। पर यह रोना वैसा नहीं था, जैसा उन्हें पहले आया करता था। पहलेका रोना पतिसे बिछुड़नेके कारण था, यह रोना भावनामें श्रीकृष्णको पाकर उनसे बिछुड़नेके कारण था। पहलेका रोना दुःखमय था। यह रोना विषामृत-मिलन जैसा दुःखमय होते हुए भी अपूर्व सुखमय था। पहलेका

रोना मायाका परिणाम था। यह रोना योगमायाका वरदान था। पहलेका रोना मिथ्या था, कालकी गतिके साथ शनैः शनैः कालके गर्भमें विलीन हो जानेवाला था। उसका विराम था। पर इस रोनेका विराम नहीं था, यह निरन्तर वर्धनशील था। इसका विराम केवल श्रीकृष्ण-पाद-पद्मकी अविचल प्राप्तिमें था।

बहुत दिन तक घरके लोग धनवन्तीबाईको संसारसे उदासीन, अनमनी और रोती-धोती देख उनके वैधव्यको ही इसका कारण समझते रहे। पर उनके मौसेरे भाई शुक-सम्प्रदायके संत श्रीरूपमाधुरीजीको समझते देर न लगी कि उनकी व्यथाका वास्तविक स्वरूप क्या था। उन्होने उन्हें सान्त्वना दी, उपदेश दिया, शुक-सम्प्रदायकी रस-साधनासे अवगत कराया और अपने गुरुदेव श्रीसरसमाधुरीजीसे दीक्षा दिलवाकर साधनपथ-पर आरूढ़ किया।

जन्म-जन्मान्तरसे भूली-भटकी प्रेममाधुरीबाईको पथ मिल गया और मिल गया एक परम अनुभवी और सिद्ध गुरुका पारमार्थिक बल। वे व्यावहारिक जगत्को पीठ दिखाकर सिंहनीकी तरह द्रुत-गतिसे उसपर चल पड़ीं।

उनका दीवानापन उनके माता-पिताको अच्छा न लगा। वे जब-कभी गुरुदेवके सत्संगमें चली जाया करतीं। यह भी उन्हें अच्छा न लगता। उन्हें उनकी खरी-खोटी सुननी पड़ती। एकबार वे बहुत बीमार हो

गयीं। चारपाईसे उठनेकी भी सामर्थ्य न रही। उसी अवस्थामें एकदिन वे गुरुदेवके दर्शनके लिए बहुत व्याकुल होकर उनका चिंतन करने लगीं। गुरुदेव उस समय अपने स्थानपर भक्त मडलीके बीच बैठे सत्संग कर रहे थे। यकायक उठ बैठे। भक्तोंसे बोले—"मुझे धनवन्ती याद कर रही है। चलो उसे देख आयें।"

उन्हें सहसा बिना निमन्त्रण आया देख घरवाले अस्त-व्यस्त हो उनकी आवभगतके लिए तत्पर हुए। धनवन्ती ने उठकर उन्हें प्रणाम करनेकी चेष्टा की। वे उन्हें उठनेके लिए निषेध करते हुए उनके सिरहाने जा बैठे। उनके मस्तकपर हाथ फेरते हुए आँख मींचकर कुछ देर बैठे रहे। फिर बोले—"शुकदेवजीकी कृपासे यह ठीक हो जायगी। इसका वृन्दावनवास होगा और बहुत-से लोगोंका इसके द्वारा कल्याण होगा।"

घरके वातावरणसे ऊबकर धनवन्तीबाई श्वशुरालय चली गयीं। यद्यपि वहाँ उनकी सेवा-पूजामें कोई रोक न थी, वहाँ भी वह हर समय उसमे लगे रहनेके कारण भार-स्वरूप समझी जाने लगीं। वहाँका वातावरण भी उन्हें दुखदाई प्रतीत होने लगा। पर वे कर ही क्या सकती थीं? संभ्रान्त परिवारकी उस विधवा युवतीके लिए श्वसुरालय और मायकेको छोड़ दूसरा स्थान ही और कौन-सा था, जहाँ वह शरण ले सकती? वह फिर मायके चली गयी।

पर उसका मन अब वृन्दावन जानेको छटपट करने

लगा। एकदिन उसने देखा कि उसके घरके सामनेसे पुलिस पकड़कर लिये जा रही है एक युवक और एक युवती को, जो अवैध रूपसे एक साथ रहनेके दोषी पाये गये थे।[१] मार्गमें लोग पुलिससे कह रहे थे—"भाई, यह दोनों अबोध हैं। नासमझीके कारण कुछ गलती कर बैठे हैं। यदि यह पश्चाताप करें और एक-दूसरेका संग छोड़नेको राजी हों, तो इन्हें छोड़ दो।"

पर वे दोनों कह रहे थे–"पुलिस हमें छोड़े, या न छोड़े, जेलमें ठूँसे, या फाँसी दे, हम एक-दूसरेको नहीं छोड़ सकते। हमने प्रेम किया है, खिलवाड़ नहीं।"

धनवन्तीबाईको उस युवतासे प्रेरणा मिली। वे सोचने लगीं—"यदि एक युवती एक साधारण पुरुषके प्रेमपर अपना तन-मन न्यौछावर कर सकती है, लोक-लाजको तिलांजलि दे सकती है और निर्भयतापूर्वक शासनतकको चूनौती दे सकती, तो मैं अपने प्रभुके लिए ऐसा क्यों नहीं कर सकती ?" उन्होंने संसारको तिलांजलि दे वृन्दावन जानेका निश्चय कर लिया।

एकबार वे वृन्दावन दर्शन करनेके बहाने वहाँ गयीं और वहीं रह गयीं। जुगल घाटपर मुकटवालोंके मकानमें रहकर भजन करने लगीं। श्रीरूपमाधुरीजी पहले ही वृन्दावन पहुँच चुके थे और वैराग्य-वेश ग्रहणकर जुगल-

---

१. उस समय जयपुरमें राजा माधोसिंहका राज्य था, जिसमें ऐसे लोगोंको कठिन दण्ड दिया जाता था।

घाटपर रह रहे थे। उन्हींसे कुछ दिन बाद उन्होंने भी भेक ले लिया। नाम हुआ श्रीप्रेम-माधुरीबाई।

प्रेम-माधुरीबाईने वृन्दावन आनेसे पूर्व वृन्दावनमें अपने निर्वाहके लिए कोई व्यवस्था नहीं की थी। वे अपने साथ भी कुछ नहीं लाई थीं। उनके विधवा होनेके बाद उनकी नन्दने सोनेकी चूड़ियाँ उन्हें पहना दी थीं। पूर्वाश्रमकी उस स्मृतिको भी वे अपने पास क्यों रखतीं? उन्होंने उन्हें बेचकर वैष्णव-सेवाके किसी कार्यमें लगा देनेका निश्चय किया। वृन्दावनमें उनके गुरु-भाई और गुरु-बहिनें अकसर आया करते थे। उनके ठहरनेके लिये कोई उपयुक्त स्थान नहीं था। उन्होंने चूड़ियाँ बेचकर एक जमीन दोसायत मोहल्लेमें खरीदी। दूसरे लोगोंने उसपर एक-एक कर कई कमरे बनवा दिये। वही स्थान आज 'शुक-भवन' के नामसे प्रसिद्ध है और वृन्दावनमें शुक-सम्प्रदायका प्रमुख स्थान है। उसीमें एक कमरेमें वे स्वयं रहने लगीं।

इस प्रकार उनके रहनेकी तो व्यवस्था हो गयी। पर जीविका निर्वाहके लिये कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। उनके बहनोई मुन्शी नानकराम जौहर जयपुर-स्टेटमें मंत्री थे। उन्होंने घरकी सम्पत्तिमेंसे उनका अपना हिस्सा दिलवाकर उनकी जीविकाका प्रवन्ध करवा देनेकी बात कही, तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। जब संसार छोड़ ही दिया, तो फिर सहारेके लिये उसकी ओर क्या ताकना। वे जिसके भरोसे वृन्दावन आयी थीं

उसकी कृपापर उन्हें पूरा भरोसा था। उसने कभी उन्हें भूखा नहीं रहने दिया। इतना ही नहीं, वे आचार्योंकी तिथिपर उत्सव और वैष्णव-सेवाका आयोजन भी करतीं। उसके लिये भी उन्हें कोई अभाव न रहता।

प्रेममाधुरीबाई नित्य जमुना-स्नान करतीं। अपने हाथसे चक्की पीसतीं और बड़ी शुचितासे रसोई तैयार कर ठाकुरको भोग लगातीं।

उनके गुरुभाई मास्टर मूलचन्दजी बी० ए० भी वृन्दावनमें रहकर भजन किया करते। वे बाईजीसे बहुत प्रभावित थे। बाईजीने उन्हें भी भेक लेलेनेका परामर्श दिया। उन्होंने कहा—"मैं भेक लूँगा तो आपसे ही, अन्य किसीसे नहीं।"

दैन्यकी मूर्ति बाईजी तो किसीको दीक्षा या भेक देती नहीं थीं। उन्होंने उनसे भी भेक देनेको मना कर दिया। पर स्वप्नमें श्रीसरसमाधुरीजीने उन्हें आज्ञाकी, तब विवश हो उन्हें भेक देना पड़ा। उनका नाम रखा श्रीमती-शरणजी।

श्रीमती शरणजीको वेश देनेके पश्चात् जब उन्होंने उन्हें पीले वस्त्रोंमें देखा, तो उन्हें उनके स्वरूपमें श्रीश्यामचरण-दासजीके साक्षात् दर्शन हुए। यह उनके भावके अनुकूल ही था। गुरुदेवमें उनका अनन्य भाव था। वे प्राणीमात्रमें गुरुदेवका अधिष्ठान जान उसे अपना पूज्य समझती थीं। उस दृष्टिसे शिष्य होनेके पश्चात् भी अन्य प्राणियोंकी भाँति

श्रीमतीशरणजी भी उनके पूज्य रहे ही। कदाचित् उनके इस भावकी पुष्टि करनेके लिये ही श्रीश्यामचरणदासजीने उन्हें उनके स्वरूपमें दर्शन दिये। उन्होंने उस समय उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

प्रेममाधुरीबाईजीको एकबार इसी प्रकार शुकदेवजीने भी साक्षात् दर्शन देनेकी कृपाकी। वे श्रीमतीशरणजी और शुक सम्प्रदायके कई अन्य लोगोंको साथले शुकतार (शुकताल) दर्शन करने गयी थीं, जहाँ श्रीशुकदेवजीने श्रीश्यामचरणदास महाराजको दर्शन देकर दीक्षा दी थी और जहाँ शुकदेवजीका मन्दिर और शुक-सम्प्रदायका गुरुद्वारा है। शुकदेवजीकी श्रीमूर्तिके दर्शनकर जब वे लौट रही थीं, उन्हें और श्रीमतीशरणजीको मार्गमें एकसाथ शुकदेवजीके साक्षात् दर्शन हुए। दोनों भाव-विभोर अवस्थामें कुछ क्षण उन्हें खड़े देखते रहे। दूसरे लोग जो उनके साथ थे उन दोनोंको उस अवस्थामें चकितसे देखते रहे। उन्हें किसी प्रकारके दर्शन नहीं हुए।

श्रीमतीशरणजी अब बाईजीकी सेवामें रहने लगे थे। वे ठाकुरके लिये अमनियाँ तैयार करते, बाईजी भोग लगातीं। भोग लगाते समय वे भावना करतीं। यदि अमनियांमें कोई कमी रह जाती, तो वे भावनामें जान जातीं। कभी वे श्रीमतीशरणजीसे कहतीं—'आज खीरमें चीनी नहीं पड़ी', कभी कहतीं 'सागमें नमक बहुत होगया, श्रीजीने नहीं पाया।' भोग लगनेके पश्चात् जब प्रसाद

चखा जाता, तो वैसा ही निकलता। कभी-कभी भोग लगाते-लगाते ही वे किसी त्रुटिका अनुभव करतीं, तो फिर से अमनियां बनाने को कहतीं। उन्होंने वृन्दावन आनेपर एकबार गोपालमन्त्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया था। तभीसे उनका भावनामें अभिनिवेष बढ़ गया था और उन्हें इस प्रकारके अनुभव होने लगे थे।

सन्तोंकी अपनी दुनियाँ अलग हुआ करती है। उन्हें एक दूसरेसे सम्पर्क करनेकेलिये टेलीफोन या वायरलेसकी आवश्यकता नहीं होती। उन्हें बिना किसी उपकरणके ही एक दूसरेका पता चल जाता है और वे एक-दूसरेके निकट खिंचते चले आते हैं। वृन्दावनके सख्यरस सिद्ध सन्त श्रीग्वारिया बाबाको प्रेममाधुरीबाईका पता चला और वे उनके पास आने लगे। एकबार प्रेममाधुरीबाई द्वारा आयोजित शरदपूर्णिमाके उत्सवमें वे पधारे। उस समय भोगकी सामग्री ठाकुरके सामने रखी जा रही थी। भोग अभी नहीं लगा था। उन्होंने थालमेंसे एक लड्डू उठाकर मुँहमें रख लिया और ठाकुरको अंगूठा दिखाकर चल दिये।

सिद्ध श्रीगौरांगदास बाबा भी उनसे बहुत स्नेह करते। वे उनकी कथामें बराबर जाया करतीं। जब कहीं उनकी कथा न होती, तो रमणरेतीमे उनके स्थानपर जाकर उनका सत्संग करतीं।

एकबार गौरांगदास बाबाके आश्रमपर किसी उत्सव में प्रेममाधुरीबाई और श्रीमतीशरणजी आमन्त्रित थे।

उत्सवके पश्चात् किसीने वैष्णव-अधरामृत बाबाको लाकर दिया। बाबाने थोड़ा स्वयं लिया और थोड़ा इन्हें दोनों को दिया। दोनोंने उसे पा लिया। थोड़ी देर बाद जब वे आश्रमसे लौट रहे थे उन्हें एक आनन्दमयी मस्तीका अपूर्व अनुभव हुआ। दूसरे दिन जब इन लोगोंने बाबासे इसका वर्णन किया, तो वे बोले—

"देखो, एक होता है प्रसाद, जो ठाकुरके सामने भोग रख दिया जाता है, दूसरा होता है महाप्रसाद, जो भाव और प्रेमसे अर्पित किया जाता है और जिसे ठाकुर प्रेमसे आरोगते हैं, तीसरा होता है सीतप्रसाद, अर्थात् सन्तोंका पाया हुआ प्रसाद, जिसे पा लेनेसे ऐसे अलौकिक अनुभव हुआ करते हैं।"

श्रीगौरांगदास बाबा भी कभी-कभी घूमते-फिरते शुक-भवन पहुँच जाते। उनकी कथा भी कभी-कभी वहाँ हुआ करती। आँगनमें एक नीमका वृक्ष था, जिसके नीचे बैठकर वे कथा कहते। उनकी कथामें एक अपूर्व अप्राकृत रसकी वर्षा होती, जिसमें श्रोता सरोबार हुए बिना न रहते। मनुष्योंकी कौन कहे स्थावर-जङ्गम भी उसे सुननेके लिए लालायित रहते। दाऊजीकी बगीचीमें पं० राम-कृष्णदासके सान्निध्यमें उनकी कथामें नित्य एक अजगरके टीक कथाके समय आने और कथाके बाद चले जानेकी कथा प्रसिद्ध हो चुकी थी। शुक-भवनमें उनकी कथामें नित्य एक मोर आया करता। कथाके मंगलाचरणके समय वह वक्ता और श्रोताओंकी परिक्रमा करता। जो

लोग दीवारसे पीठ लगाकर बैठे होते उनसे बाबाको थोड़ा आगे सरककर बैठनेको कहना पड़ता, जिससे वह परिक्रमा कर सके। परिक्रमाकर वह बाबाके मुखके सामने वाली आँगनकी दीवारपर जा बैठता। वहाँ बैठकर कथा सुनता और कथाके समाप्त होते ही उड़ जाता।

एकबार बाबा शुक-भवनमें वृन्दावन-महिमामृतकी कथा कह रहे थे। होलीके कुछ दिनोंके लिए कथाको विश्राम देना पड़ा। उस समय बाईजीकी छोटी बहिन विद्यावती और बड़ी बहिनकी लड़की दयाबाई उनके पास ठहरी हुई थीं। उन्हें और श्रीमतीशरणको साथले वे गिरिराजको परिक्रमा करने गयीं। परिक्रमा मार्गपर जतीपुरामें कुछ देर एक ब्रजवासीके घर रुकीं।

वहाँके ब्रजवासियोंमें प्रथा है कि होलीसे पूर्व वहाँके सभी घरोंके ब्रजवासी एकत्र होकर गिरिराजजीकी तरहटीमें जाते हैं। वहाँ समाज-गान करते हैं। उसके पश्चात् गिरिराजको होली खेलनेका निमन्त्रण दे घर लौट आते हैं। उस दिन जब यह लोग वहाँ पहूँचे, तब वे सबलोग गिरिराजकी तरहटीमें जानेको प्रस्तुत थे। यह भी उनके साथ हो लिये। समाज-गानके पश्चात् गिरिराजको निमन्त्रण दे सबके साथ घर लौट आये। लौटते समय प्रेममाधुरीबाईने कहा—"चलो इस बहाने गिरिराजजीके दर्शन होगये। कोई गिरिराज होली खेलने थोड़े ही आते हैं।"

थोड़ी देर बाद यह लोग परिक्रमा-मार्गपर आगे चल दिये। कुछ दूर जाकर बाईजीने देखा कि एक सात-आठ वर्षका बालक मोर-मुकुट-पीताम्बर और बहुमूल्य आभूषण धारण किये हाथमें छड़ी लिये विपरीत दिशामें चला जा रहा है। उसकी चमचमाती हुई जरीकी पोशाक और हीरे-मोतीके गहनों पर निगाह नहीं टिक रही है। वे बोलीं—"देखो, यह किसका बालक है? इतने बहुमूल्य आभूषण धारण किये अकेला यहाँ विचर रहा है। कोई इसका अनिष्ट न करदे।"

साथियोने कहा—"कहाँ? हमें तो कोई नहीं दीख रहा।"

"अरे, अभी-अभी तो हमारे पाससे निकलकर गया है" कह वे उसकी पोशाक और आभूषणोंका वर्णन करने लगीं।

जब गोवर्धन पहुँची तो देखा गिरिराज ठीक वैसे ही वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं। यह देख उनके शरीर में कम्प होने लगा और नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। वे समझ गयीं कि गिरिराज गमनागमन करते हैं और भक्तोंके निमन्त्रणपर होली खेलने भी जाते हैं। बालरूपमें गिरिराजकी वह छबि उनके हृदयमें समाकर रह गयी।

उस दिन रातको वे गोवर्धनमें रह गयीं। दूसरे दिन बरसाने चली गयीं। दो-तीन वहाँ रहकर और वहाँकी रङ्गीली होली देखकर वृन्दावन लौट गयीं। इस बीच

बराबर गिरिराजकी वह छबि उनके नेत्रोंके सामने घूमती रही। वे कुछ खोई-खोई रहीं और उनके नेत्र अनवरत अश्रुओंसे सिक्त रहे।

जिस दिन वे वृन्दावन पहुँचीं श्रीगौरांगदास बाबाकी कथाके विश्रामकी अवधि समाप्त हो चुकी थी। वे कथाके समयसे कुछ पूर्व ही शुकभवन आ विराजे थे। प्रेममाधुरी-बाईको देख वे बोले—"कहाँ, कहाँ दर्शन किये ?"

बाईजीने राधाकुण्ड, बरसाना और गोवर्धनादिके दर्शनकी बात कही। तब बाबाने कहा—परिक्रमा मार्ग पर गिरिराजके दर्शनकी बात तो तूने कही नहीं।"

बाबाके मुखसे यह सुनते ही उनके धैर्यका बाँध टूट गया। आसुओंका ढेऊ, जिसे वे कई दिनसे रोकनेकी चेष्टा कर रही थीं, सहसा उमड़ पड़ा। बाबाके चरणोंमें सिर रख वे फूट-फूटकर रोने लगीं। बाबाके नेत्रोंसे भी अश्रु-धार बह निकली। उन्होंने उनके सिरपर हाथ रखा और कहा—"लाली, तू धन्य है !"

थोड़ी देर बाद प्रकृतिस्थ हो वे बोले—"यह कोई अनहोनी बात नहीं। प्रिया-प्रियतमकी अप्राकृत लीलाओं की भावना करते-करते साधकके मन-प्राण अप्राकृत हो जाते हैं, वैसे ही जैसे अग्निमें डाला हुआ लोहा अग्नि हो जाता है। तब अप्राकृत नेत्रोंसे उसे उन अप्राकृत लीलाओं के दर्शन होने लगते हैं।"

प्रेममाधुरीबाईकी एक विशेषता यह थी कि वे सभी सम्प्रदायोंके महात्माओं और ग्रन्थोंका आदर करतीं।

इसलिये बाबा गौरांगदासजी, ग्वारिया बाबा, बाबा हंस-दासजी, बाबा बालगोविन्ददासजी आदि सभी सम्प्रदायों के सन्त उनके पास आया करते। उनके संग और सभी सम्प्रदायोंके बाणी-ग्रन्थोंके अध्ययनके प्रभावसे राधारानी के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा होगयी और वे विशुद्ध सह-चरी भावसे मानसिक और दैहिक सेवामें संलग्न रहने लगीं। वे आचार्य श्रीश्यामचरणदासजीके इस पदको अकसर दोहराया करतीं—

श्री स्वामी हरिदासजी, रसिक महा हरिव्यास।
कृष्णदास अरु हित अली इन मारग सुखरास॥
सोई मेरो मार्ग है महामोद की खान।
उन्नत परम निकुञ्ज रस तिन बाणी परमान॥

(भक्तिरस-मंजरी)

प्रेममाधुरीबाईने सोचा कि प्रेमसरोवरका एकाँत और रमणीक वातावरण सहचरी भावकी मानसिक सेवा के लिए अधिक उपयुक्त होगा। इसलिए वे कुछ दिन वहाँ रहकर भजन करनेके उद्देश्यसे मतीशरणजीको साथ ले वहाँ चली गयीं। रामगढ़के श्रीनारायणप्रसाद पोद्दारके आग्रहसे उनके गोपालजीके मन्दिरके सामनेवाले हिस्सेमें ठहरीं। वहाँका परिवेश उन्हें अपने भजनेके बहुत अनुकूल प्रतीत हुआ। वे ११ वर्षतक वहीं रहकर भजन करती रहीं। उस समय श्रीप्रियाशरण बाबा वहाँ रहते थे। उनका सतसङ्ग भी वे करती रहीं।

वहाँ उनका शुद्ध सहचरी भावके अपने भजनमें अभिनिवेश और अधिक बढ़ गया। श्रीजीकी कृपा भी उनके ऊपर पहलेसे अधिक होने लगी। उन्हें उनकी दिव्य-लीलाओंकी कभी कोई छटा दीख जाती, कभी कोई। एकबार प्रातः जब वे प्रेमसरोवरपर स्नान करने गयीं, उन्होंने देखा कि सरोवरके उस पार दिव्य प्रकाश होरहा है और मोर नृत्यकर रहा है। वे श्रीमतीशरणजीको लेकर उस पार गयीं तो कुछ नहीं।

रात्रिमें सरोवरके निकट वैसा ही प्रकाश उन्हें एक-बार फिर दिखाई दिया। सुन्दर रागके साथ रास-नृत्यकी सी आवाज भी सुनाई पड़ी। पर दिखाई कुछ नहीं दिया। वे उसके अन्वेषणमें देरतक जंगलमें भटकती रहीं। फिर भी दीखा कुछ नहीं। वे राधारानीके प्रति आक्षेप करती हुई दुःख प्रकट करने लगीं—"स्वामिनी, जब इतनी कृपा करती हो, तो दीखती क्यों नहीं ? तुम्हें क्या अच्छी लगती है यह आँख-मिचौनी ? तुम क्या नहीं जानतीं इससे मेरे ऊपर क्या बीतती है ?"

इस प्रकार आक्षेप-सहित रोदन करते उन्हें सारी रात बीत गयी। प्रातः एक बालिकाने उनके निकट आकर उन्हें पीलूके फल देते हुये कहा—"देखो, ये कैसे मीठे हैं ?"

फल देकर वह जाने लगी और देखते-देखते अन्तर्धान होगयी। इस प्रकार छद्म वेशमें राधारानीकी कृपा प्राप्तकर वे कृत-कृत्य होगयीं।

ग्यारह वर्ष पश्चात् वे फिर गुरुभाई-बहिनोंके आग्रहसे वृन्दावनमें शुक-भवनमें जाकर रहने लगीं। जाते ही उन्होंने श्रीमद्भागवत-सप्ताहका आयोजन किया। पाठके अन्तिम दिन लगभग १०० वैष्णवोंको जिमानेकी व्यवस्था की। भोग लगाते-लगाते १०० वैष्णव नन्दग्राम, बरसाना और जयपुरसे और आ पहुँचे। श्रीमतीशरणजी घबराये हुये उनके पास जाकर बोले—"अब क्या होगा ? प्रसाद थोड़ा है, खानेवाले बहुत हैं।"

उन्होंने डाटते हुए कहा—तुम्हारी जड़-बुद्धि अभी तक नहीं गयी। भगवत-प्रसाद भगवानकी ही तरह चिन्मय और विभु है। चिंता क्या है ?"

सचमुच, सभी लोगोंने भरपेट प्रसाद पाया, फिर भी कुछ बच रहा।

प्रेममाधुरीबाई मान-प्रतिष्ठासे दूर रहतीं। उन्होंने कभी किसीको अपना फोटो लेनेकी अनुमति नहीं दी। राजस्थानके भक्त श्रीजगदीशदास राठौरने शुक-सम्प्रदायके सन्तोंके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें गाये जानेके लिए बधाईके पदोंकी रचनाकी थी। उनके मनमें विचार आया कि बाईजीके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें भी वे बधाईके पदकी रचना करें। बाईजीसे उन्होंने इस सम्बन्धमें कोई चरचा नहीं की। फिर भी उन्होंने उनका मनोभाव जानकर उनसे कहा—"मेरे जीवित रहते मेरे विषयमें कुछ न लिखना।"

संवत् २०३३, आश्विन मासमें वे अस्वस्थ हुईं। श्रीमतीशरणजी उनकी सेवामें थे। आश्विन, शुक्ला चतुर्दशीको उन्होने उनसे कहा—"मुझे श्रीजीके सामने ले चलो।" उन्हें उस कमरेमें ले जाया गया, जहाँ श्रीजी विराजमान थे। श्रीजीके दर्शनकर वे अपने कमरेमें चली गयीं। उस समय उनके मुखारविन्दपर अपूर्व तेज था। वह खिले हुए कमलके समान प्रफुल्लित दीख रहा था। वे भावनामें अपने सहचरी-स्वरूपमें स्थित हो चुकी थीं। कुछ ही देर बाद उसी स्वरूपसे वे श्रीजीके निकट निकुञ्ज में पहुँच गयीं।

बाईजी अपनी स्मृति स्वरचित कुछ पदोंमें छोड़ गयी हैं। उनके भक्त उनका संग्रह प्रकाशित करनेकी चेष्टामें हैं। उदाहरण रूपमें एक पद इस प्रकार है, जो उन्होंने अपने गुरु श्रीसरसमाधुरीजोकी स्तुतिमें लिखा है—

सरस घन रस मेंह बरसावें।
करें गरजना जुगल नाम की, रसिक मोर हरषावें॥
बिच-बिच झलकन रूप-छटा की दामिनी दमकावें।
भक्त जनन की उर अवनी में भाव-वृक्ष प्रकटावें॥
उमंग हर्ष के भरे सरोवर, नेंह लहर लहरावें।
पावस ऋतु श्रीगुरु-कृपा नित नई मौज दिखावें॥
करें प्रफुल्लित तन-मन सबके, चहुँ दिश आनन्द छावें।
प्रेम कोयल मतवाली ह्वै के विनती शब्द सुनावें॥

श्रीहितकिशोरीशरण बाबाजी (सूरदास)

(वृन्दावन)

"भैया ! मेरे मनमें ऐसी आवे कि विश्वको कुत्ता हू दुःखी न होय, भले ही श्रीजी सबनकौ दुःख मोकूँ देदें। मेरौ बस चलै तो सबरे जगत्‌कौ दुःख अपनी छातीपर धर लऊँ।" श्रीकिशोरीशरण बाबा अपने भक्तोंसे अकसर कहते।

दृष्टिविहीन, पर अन्तर्दृष्टि सम्पन्न, मझले कदके, छरहरे बदनके, बाहरसे कमजोर दीखनेवाले, पर भीतरसे अपनी अलौकिक शक्तियोंके कारण असाधारण बल रखने वाले बाबा किशोरीशरणजी वृन्दावनमें, दुसायत मुहल्ले में, श्यामाकुञ्ज नामक आश्रममें संसारके दीन-दुःखी और अभाव-ग्रस्त जीवोंके लिए कल्पतरुके समान और कलि-कालके मोहान्ध, पथ-भ्रान्त पथिकोंके लिए अन्धकारमें दिव्य आलोक-पुञ्जके समान विराजा करते। आबाल-वृद्ध-वनिता, अमीर-गरीब, साधु-सन्यासी सभीके लिए उनका दरवाजा सब समय खुला रहता। वे अपने दुःख-सुख, भाव-अभावकी बात उनसे कहते। बाबा उनकी सुनते, उनका दुःख दूर करने और अपने अमृतमय उपदेशोंसे उन्हें सांत्वना देनेकी चेष्टा करते।

जाड़ेके दिन हैं बाबा कुछ भक्तोंके साथ श्यामाकुञ्जके बराम्देमें बैठे अँगीठी ताप रहे हैं। एक भक्तने उन्हें ऊनी कपड़ेकी एक बंडी लाकर भेंटकी। बाबाने प्रेमसे उसे

धारण किया। थोड़ी देर बाद बोले—"बंडी बड़ी मलूक है। जामें नेंकऊ ठण्ड नाँय लगै।"

उसी समय एक गरीब व्रजवासी ठण्डसे काँपता हुआ आया और बोला—"बाबा, बड़ी ठण्ड है। मेरे पास कुछ पहननेको नहीं है।"

बाबाने बंडी उतारकर उसे देदी। देते हुए बोले—"ले भैया, तेरे ताईं आजई बनकें आयी है।"

एक ग्वारियेकी तीन भैंसें चली गयीं। बहुत खोज करनेपर भी न मिलीं। वह भागा आया बाबाके पास। उनके चरणोंमें कुछ भेंटकर उन्हें दण्डवत् की। वह कुछ कहे उसक पूर्व ही भेंट वापस देते हुए बाबा बोले—"जाको अपने पास रख। भैंस मिल जायें तो अखण्ड कीर्तन करवाय दीजौ।"

उसे आश्चर्य हुआ कि बाबाको इतनी दूरकी बातका बिना उसके कहे कैसे पता चल गया। वह उनके चरण पकड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनकी ओर देखते हुए बोला—"बाबा, आप कृपा करेंगे तभी न भैंसें मिलेंगी। मेरी तो सारी सम्पत्ति ही हैं वे। यदि न मिलीं तो मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे।"

बाबाका हृदय पसीज गया। वे बोले—"चिंता न कर। तेरी भैंसें पूर्व दिशामें जमुनाके पल्लीपार उतर गयी हैं। एक पेड़के नीचे बैठी मिलिंगी। दोपहर पीछे जायकें लै अइयों।"

बाबाके वचन सत्य सिद्ध हुए। उसे जमुनापार निर्दिष्ट स्थानपर भैंसें मिल गयीं। उसने कीर्तनका आयोजन तो किया ही, वह और उसका सारा परिवार बाबासे दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया।

एक सज्जन और उनकी पत्नी बाबाका नाम सुनकर मिर्जापुरसे आये। बाबाके चरणोंमें दण्डवत्‌कर बोले—"महाराज, हमारा लड़का खो गया है। हम बड़े दु:खी हैं। आपकी अहैतुकी कृपाका भरोसा लेकर आपकी शरण में आये हैं।"

कुछ देर मौन रहकर बाबा बोले—"भैया, तोकूँ अपने छोराको खोजबे कहूँ जानौ नाँय पड़ेगौ। आज हियाँ भण्डारा है। तेरौ छोरा पंगतमें प्रसाद पामतौ मिल जायगौ।"

पति-पत्नी बड़ी उत्सुकता और व्याकुलताके साथ पंगतकी प्रतीक्षा करने लगे। पंगतके समय उन्होंने चारों ओर घूमकर देखा, तो सचमुच उन्हें अपना लड़का पंगतमें बैठा मिल गया। उन्होंने झट जाकर उसे छातीसे लगा लिया। बाबाके पास लाकर उन्हें दण्डवत् करनेको कहा। बाबाने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए माता-पिताके साथ घर जानेको कहा। बाबाके सिरपर हाथ फेरते ही उसके हृदयमें वांछित परिवर्तन हुआ और वह प्रसन्न मनसे उनके साथ घर जानेको राजी हुआ। जाते समय दम्पतिने बाबाको दो सौ रुपये भेंट किये। बाबाने उन्हें लौटाते हुए कहा—"इसमें तीन सौ रुपये और मिलाना और

तुम्हारे गाँवमें जो हनुमानजीका मन्दिर है, उसकी मरम्मत करवा देना।"

सूरदास बाबाके कृपापात्र पंडित मंगतराम वशिष्ठके सुपुत्र श्रीभूपिन्द्रकुमार शर्मा डाक्टरी पढ़ने जर्मनी गये थे। बहुत दिनोंसे उनका पत्र न आनेके कारण मंगतरामजी चिंतित थे। बाबाने अपनी दिव्य दृष्टिसे उनका सब हाल जान लिया। मंगतरामजीसे कहा—"भूपिन्द्रके पेटमें फोड़ा होगया था। उसका आपरेशन जरूरी था। आपरेशन खतरनाक था। जर्मनीके कई बड़े डाक्टरोंने मिलकर आपरेशन किया। आपरेशन सफल हुआ। अब वह ठीक है। कमजोर अधिक होगया है। आठ दिनके भीतर उसके हाथका पत्र आ जायगा आप चिन्ता न करें।" आठवें दिन पत्र आ गया। उसमें वही सब लिखा था, जो बाबाने बताया था।

निठारी ग्राममें चूहोंका आतंक था। चूहे खेतोंमें खड़ी फसलोंको काट-काटकर गिरा देते थे। कृषक बहुत परेशान थे। उन्होंने चूहोंको भगानेके लिये दवाइयों आदिका प्रयोग किया। पर कोई परिणाम न निकला। अन्तमें उन्होंने बाबाकी शरण ली। बाबाने गणेश-पूजाके वृहत् अनुष्ठानकी आज्ञा दी। अनुष्ठान आरम्भ हुआ। कई दिन तक जाप और पाठादि चलता रहा। बाबा भी उतने दिन ग्राममें ही रहे और मौन रहकर कुछ जाप और चिंतन करते रहे। अनुष्ठानके समाप्त होने तक सब चूहे न जाने कहाँ चले गये।

बाबा एक सिद्ध योगी भी थे। वे यौगिक क्रियाओं द्वारा अपने रोगोंका उपचार आप कर लिया करते थे। एकबार वे ऋषीकेशमें बीमार पड़े। डाक्टरोंने कहा—"आपका फेफड़ा गल गया है। इसे आपरेशन करके निकालना होगा।" दूसरे दिन प्रातः वे आसनपर बैठ गये और यौगिक क्रियाके पश्चात् खाँसकर मुँहसे गला हुआ फेफड़ा निकाल दिया। पासमें बैठे स्वतन्त्रा सैनानी श्रीमतीचन्द्रवतीके पति श्रीललिताप्रसादजीको उसे खींचकर दिखाते हुए बोले—"देखो बाबूजी, कैसा रबड़की तरह होगया है। इसीको निकालनेके लिए डाक्टर आपरेशन करने कह रहे थे।"

उनका योगका एक चमत्कार देखकर तिलपत और भोगलके लोग आश्चर्य चकित रह गये थे, जब उन्होंने एक ही दिन एक ही समय इन दोनों जगहोंके कीतनमें भाग लिया था।

बाबाकी बहुमुखी प्रतिभामें उनकी विद्वताका स्थान भी कम महत्वका न था। यह कहना कठिन है कि उन्होंने विद्याका उपार्जन कब और कैसे किया। पर वे वेद, उपनिषद् और पुराणादिके बड़े मर्मज्ञ थे। धर्म-ग्रन्थोंके प्रकाशनमें भी उनकी बड़ी रुचि थी। श्रीहरिलाल द्वारा लिखित राधासुधानिधिकी रसकुल्या टीकाका प्रकाशनकर उन्होंने उसका निःशुल्क वितरण किया। 'श्रीहित स्फुटवाणी' और 'श्रीनागरीदासजीकी वाणी' का भी उन्होने प्रकाशन किया।

बाबा किशोरीशरणजीका जन्म गढ़वालके एक कुलीन ब्राह्मण परिवारमें हुआ। शैशवमें ही माता-पिता परलोक सिधार गये। संसार क्षणभंगुर है, इसके सम्बन्ध झूठे हैं, इससे शास्वत सुख और शान्ति प्राप्त करनेकी आशा मृगमरीचिका है—इसका अहसास उन्हें होश सम्हालते ही होने लगा। वे शास्वत सुखकी खोजमें घरसे निकलकर हिमालयकी ओर चल पड़े। गगोत्रीके निकट आनन्द गिरि नामके एक सन्यासीसे उनकी भेंट हुई। उनसे संन्यास लेकर वहीं एक गुफामें ध्यान-धारणा करने लगे। पर उनके रसलोलुप हृदयको यह मार्ग रसके लोभसे ओखलीमें शुष्क तृण-समूहको कूटते रहने जैसा लगा। उन्हें ज्ञानके गह्वरमें अपने बाहर और भीतरका अकेलापन खलने लगा।

भाग्यसे उसी समय उन्हें परसरामदास नामके एक वैष्णव महात्माका संग प्राप्त हुआ। उनके संगसे उनका मन वृन्दाविपिन और उसके सहज-सलौने ठाकुर मोर-पिच्छ-बंशीधारी, रासबिहारी श्रीकृष्ण और उनकी प्राण-प्रिया, परमाराध्या राधा ठाकुरानीके प्रति आकर्षित हुआ। वे उनका स्मरण करते-करते वृन्दावनकी ओर अग्रसर हुए। वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने भजन-सिद्ध श्रीपरमानन्ददासजीसे वैष्णवी दीक्षा ली और उनके दोसायत-स्थित स्थानमें रहकर श्रीठाकुर श्यामावल्लभजी की अष्टयाम:सेवाका सुख लेने लगे। परमानन्दजीकी

निकुञ्ज-प्राप्तिके पश्चात् उन्होंने इस स्थानका विस्तारकर इसे वर्तमान श्रीश्यामाकुञ्जके नामसे प्रसिद्ध किया।

वे एक नाम-निष्ठ सन्त थे। पर श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'जीवे दया, नामे रुचि' सिद्धान्तके अनुसार भीतरसे नाम-स्मरणकी साधनामें लगे रहते हुए भी बाहरसे सदा घूम-फिरकर लोकोपकारी कार्य करनेमें व्यस्त रहते थे। वे जहाँ भी जाते उनके प्रेमीजन जी खोलकर उन्हें भेंट देते। वे भेंटकी राशिको मुस्कराते हुए बगलबन्दीमें रखते जाते। जब वह पर्याप्त हो जाती, उसे उसी स्थानपर किसी पर-मार्थ कार्यके लिए वहाँके लोगोंको सौंप देते। वृन्दावन, तिलपत, पल्ला, मवई, महावतपुर, वल्लभगढ़, भोगल, निठर्री, रायपुर, व्रजघाट, सूंगरपुर, ऋषीकेश आदि अनेकों स्थानोंमें उनके द्वारा इस प्रकार बनावाये गये मन्दिर, धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, और प्याऊ आदि उनकी उदारता और पारमार्थिक कार्योंमें अभिरुचिकी आज भी याद दिलाते रहते हैं।

बाबा इतने सामर्थ्यवान और ऐश्वर्यशाली होते हुए भी स्वयं बड़े वैराग्यसे रहते। उनके पास जो कुछ भी आता, उसे वे प्रभु और उनके प्रियजनोंकी सेवाकी सामग्री जानकर तदनुरूप ही उसका व्यय करते। एकबार उनके पास बिहारके एक महन्त, जो कभी बड़े प्रभावशाली थे पर अब प्रभावहीन और श्रीहीन हो चुके थे, उनके पास आये इसका कारण जानने। उन्हें देखते ही बाबाने कहा—

"भइया भले आये। तुमने श्रीजीकी सम्पत्तिका अपने सुखके साधन जुटानेमें प्रयोग किया। इसीलिये तुम्हारा प्रभाव कम होगया। साधुका तो केवल सेवाका अधिकार है और जितनेमें प्रभु और उनके जनोंकी सेवाके लिए प्राप्त यह शरीर चल जाय, उतना ही इसके प्रयोगमें ले आनेका।

बाबा तो अपने शरीरको भी अपना न मानते। वे उसे दूसरोंका दुःख दूर करनेका एक उपकरणमात्र समझते। वे अकसर दयापरवश हो दूसरोंका रोग स्वयं ले लिया करते। एकबार कोसीमें उनके कृपापात्र श्रीभार्गव महोदयको अकस्मात् आँखका भयंकर कष्ट हुआ। परिवारमें उदासी छा गयी। रसोई भी उस दिन नहीं बनी। अन्तर्यामी बाबाको वृन्दावनमें इसका पता चला। वे कोसी जा पहुँचे। बाबाको अकस्मात् आया देख सबलोग परमान्दित हुए। उन्होंने समझ लियाकि मंगलमूर्ति बाबाके आ जानेपर अब अमंगल अधिक नहीं टिकनेका। बाबाने वहाँ पहुँचते ही पहले रसोई बनानेका आदेश दिया। रसोई बनते-बनते भार्गव साहब का कष्ट जाता रहा और बाबाकी आँखोंमें उसी प्रकारके कष्टके लक्षण उभरने लगे। बाबा बिना किसीको कुछ बताये भोगल ग्राम जानेको उठ खड़े हुये। सबने रसोई बननेके पश्चात् प्रसाद पाकर जानेका आग्रह किया। पर बाबा बोले—"रसोई तो मैंने तुम्हारे लिये बनवाई। मुझे अभी कुछ नहीं लेना है।" इतना कह वे भोगलके लिए चल पड़े।

भोगल पहुँचकर उनकी आँखोंका बिल्कुल वही हाल हुआ, जो भार्गव साहबको आँखोंका हुआ था। भार्गव साहब को जब इसका पता चला तो वे भोगल गये। बाबाके चरण पकड़कर बोले—"मेरा दुःख मुझे वापस करदें। मुझसे आपका दुःख देखा नहीं जाता।"

बाबाने कहा—"मेरा इससे कुछ नहीं बिगड़ता। तुम सद्गृहस्थ हो। परिवारका तुम्हारे ऊपर दायित्व है। तुम्हारे दुःखी होनेसे सारे परिवारको दुःखी होना पड़ता है। तुम जाओ, अपना काम करो। मेरा कष्ट अधिक नहीं रहेगा।" फिर भी भार्गव साहब दिल्ली गये और दो नेत्र-चिकित्साके विशेषज्ञ डाक्टरोंको साथ लेकर आये।

डाक्टरोंको देख बाबाने कहा—"इन्हें इनकी फीस देकर वापस करदो। मुझे नेत्र इन्हें नहीं दिखाने। श्रीराधावल्लभ स्वयं मेरे नेत्र ठीक कर देंगे।"

दूसरे दिन श्रीराधावल्लभकी कृपासे उनके नेत्र भी ठीक होगये।

मेरठके एक वकील साहबका लड़का महीने भरसे सख्त बीमार था। उसके बचनेकी कोई आशा न थी। उन्होंने बाबाके पास वृन्दावन जाकर अपना रोना रोया और उनसे उसी समय अपनी गाड़ीमें मेरठ चलनेका आग्रह किया। बाबा उनका आग्रह न टाल सके। मेरठ जाकर वकील साहबके मकानकी दूसरी मंजिलमें उन्होने लड़केको देखा। वह शायद अंतिम साँसें लेनेकी स्थितिमें था। उसे देख वे बाहर आ गये और सीढ़ियोंसे नीचे उतरते हुए बोले—'मैं इसी

समय वृन्दावन लौटूंगा।" सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते उन्हें खूनकी उल्टी हुई। यह देख वकील साहब और भी घबरा गये। उन्होंने बाबासे उस रात उनके घरपर ही विश्राम करनेका आग्रह किया। पर बाबाने एक न सुनी। उन्हें उसी समय वृन्दावन पहुँचाना पड़ा। दूसरे दिन जब वकील साहब घर वापस पहुँचे तो उनका लड़का चारपाईसे उठकर टहल रहा था। कुछ ही दिनोंमें वह पूर्ण स्वस्थ होगया। बाबाने उसे देखते ही उसका रोग ले लिया था। तभी उन्हें खूनकी उल्टी हुई थी। वे कुछ दिन बीमार रहकर ठीक होगये।

बाबाकी परदुःखकातरताकी कोई सीमा न थी। उन्होंने न जाने कितने लोगोंको इसी प्रकार रोगमुक्तकर स्वयं कष्ट भोगा। वे कहा ही जो करते—"मेरौ बस चलै तौ सबरे जगत्‌कौ दुःख अपनी छातीपर धर लऊँ।" दूसरोंके दुःख अपनी छातीपर लेते-लेते ही उन्होंने अन्तमें प्राण त्याग दिये। अन्त समय, जब दिल्लीके होली फेमली अस्पतालमें उनका इलाज होरहा था, उन्होंने पंडित मंगतरामजीसे कहा था—"इस बार मैंने एक ऐसे अपराधीका अपराध मोल ले लिया है जिससे मैं मौतसे लड़नेकी अपनी सारी शक्ति ही खो बैठा हूँ।"

पर, जैसा हम ऊपर संकेतकर चुके हैं, यह बाबाका बाह्य स्वरूप ही था। अन्तरमें वे नाम-साधनामें सदा लगे

रहते। इस प्रकारके लोकोपकारी कार्योंमें लगे रहनेका भी उनका मूल उद्देश्य इनके द्वारा अन्य लोगोंमें नाम और नामीके प्रति श्रद्धा और भक्तिका बीज वपन करना था। वे इनके बदले लोगोंसे उनके अपने ही कल्याणके हेतु नाम-जपकी भिक्षा माँगते। नामकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्हें विश्वास दिलाते कि नाम ही उनका सच्चा हितैषी, रक्षक, पालक और उद्धारक है। एकबार नाम की महिमाका वर्णन करते हुए उन्होंने अपने अनुभवकी एक बात इस प्रकार कही थी—

"मैंने और मेरे दो साथियोंने एकबार काबुलकी यात्राकी। एक दिन प्रातः चार बजे हमलोग कीर्तन करते हुए काबुलसे कुछ दूर एक दर्शनीय स्थानकी ओर जा रहे थे। हममेंसे एकके पास चाँदीके रुपयोंकी थैली थी, जो रास्तेमें फट गयी। रुपये जमीनपर बिखर गये। हमलोग जल्दी-जल्दी उन्हें समेटने लगे। इतनेमें चार बन्दूकधारी जंगलमेंसे निकलकर बन्दूकें हमारी ओर तानते हुए बोले– "जो कुछ तुम्हारे पास है रख जाओ, नहीं तो मार डाले जाओगे।"

मुझे विश्वास था कि हम श्रीराधावल्लभलालके नाम का कीर्तन करते आ रहे हैं। नाम भगवान् हमारे साथ हैं। वे अवश्य डाकुओंसे हमारी रक्षा करेंगे। इस विश्वास के साथ मैंने फिर राधावल्लभ नाम लेना शुरु किया। उसी समय पुलिसके छः घुड़सवार उन डाकुओंको खोजते हुए उधर आ निकले और उन्हें पकड़कर ले गये।"

बाबा कहा करते—"सदा प्रसन्न रहो। मुस्काते हुए श्यामा-श्यामका चिंतन करते रहो और नाम-जप करते रहो। नाम-जपसे प्रसन्नतामें स्थायित्व आता है, नहीं तो प्रसन्नता आती है और चली जाती है।"

राधा-नाममें बाबाकी अनन्य निष्ठा थी। वे कहा करते कि स्वयं श्रीकृष्ण भी यमुनातटपर कुञ्ज-मन्दिरमें योगिराजके समान बैठकर श्रीराधाके चरणकमलोंकी ज्योतिका ध्यान करते हुए और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु विसर्जन करते हुए उनके नामका जप किया करते हैं—

कालिंदीतटकुञ्ज मन्दिरगतो योगीन्द्रवद्यत्पद।
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमश्रुपूर्णो हरिः॥

(रा० सु० ९५)

बाबा राधा-नाम रटते हुए श्यामा-श्यामकी अष्ट-कालीन लीलाओंके चिंतनमें निमग्न रहते। अन्तमें उन्होंने लीलामें प्रवेश करनेका निश्चय किया। एक दिन अपने भक्तोंसे यह कहकर इसका संकेत किया कि "रक्षाबन्धन के दिन बारात निकलेगी।" पर कोई इस संकेतको समझ न सका। अपने निश्चयके अनुसार रक्षाबन्धनके दिन हो श्रावण, पूर्णिमा, सम्वत् २०३६ को उन्होंने नित्य-लीलामें प्रवेश किया। इससे लगता है कि किसी बड़े अपराधीका अपराध अपने ऊपर लेकर शरीर छोड़नेकी बात शरीर छोड़नेका एक बहाना मात्र था।

बाबामें जो अलौकिक शक्ति थी वह उन्होंने नाम-जप और कीर्तनसे प्राप्तकी थी। इसलिए वे जहाँ भी जाते नाम-

जप और कीर्तनका प्रचार करते । अष्टप्रहर-नाम-कीर्तन और भण्डारे तो उनके साथ नित्य लगे ही रहते । कभी-कभी मुसलमान भक्त भी उनके कीर्तनोंमें सम्मिलित होते देखे जाते ।

राधाष्टमीका उत्सव वे बड़ी धूमधामसे मनाते । उस दिन उनके स्थानपर साधु-वैष्णव सेवाका विराट् आयोजन होता । सहस्रोंकी संख्यामें साधु-महात्मा और गृहस्थ, सेठ-साहूकार और दरिद्र भिखमंगे भरपेट प्रसाद पाते । सभी के लिए उनका दरवाजा खुला रहता । यदि भण्डारेमें कमी पड़ जाती और सेवकगण उनके पास जाकर चिंता व्यक्त करते, तो वे स्वयं भण्डारेमें जाते । लड्डू-पूरी आदिपर हाथ फेरते हुए कहते—"सामान तो बहुत है । तुम लोग व्यर्थ चिंता करते हो । देखो, भण्डारेकी जिम्मेदारी मेरी है, पंगतकी तुम्हारी । तुम निःसंकोच खुले हाथ से परसते जाओ ।" सेवकगण ऐसा ही करते और भण्डारे में कभी किसी प्रकारकी कमी न पड़ती ।

संध्या समय वे अपने स्थानसे गाजे-बाजे और तरह-तरहकी आकर्षक चौकियोंके साथ एक विशाल शोभा-यात्रा निकालते । शोभायात्रा में सम्मिलित उनके सहस्रों भक्तोंकी कीर्तन-ध्वनिसे वृन्दावनका आकाश गूँज उठता । आज भी उनके भक्त उसी उत्साहसे राधाष्टमीका उत्सव मनाकर वृन्दावनके जनमानसमें उनकी पुण्य स्मृति जगाते रहते हैं ।

श्रीकृष्ण सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देश का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्रतिमास लगभग ७२ पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

वार्षिक शुल्क	१० रुपये।
आजीवन शुल्क	१५१ रुपये।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक-श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा-२८१००१

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"